॥ श्रीहरिः ॥ 408▲

भगवान्‌से अपनापन

गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR

स्वामी रामसुखदास

॥ श्रीहरिः ॥

भगवान्‌से अपनापन

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

स्वामी रामसुखदास

॥ श्रीहरिः ॥

नम्र निवेदन

प्रस्तुत पुस्तकमें परम पूज्य स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजद्वारा वृन्दावनमें किये गये कुछ कल्याणकारी प्रवचनोंका संग्रह किया गया है। प्रवचन भगवत्प्राप्तिके अभिलाषी साधकोंके लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इनमें गूढ़ तत्त्वोंको बहुत सरल रीतिसे और बोलचालकी भाषामें समझाया गया है। कल्याणकामी पाठकोंसे निवेदन है कि वे इस पुस्तकका अध्ययन-मनन करके इससे अधिकाधिक लाभ उठानेकी चेष्टा करें।

विनीत

—प्रकाशक
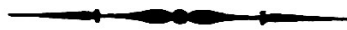
॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

विषय		पृष्ठ-संख्या
१- भगवान्‌से अपनापन	....	५
२- सदुपयोगसे कल्याण	....	२५
३- नाम-जप और सेवासे भगवत्प्राप्ति	....	४६
४- कर्मयोगका तत्त्व	....	६५
५- सुगम साधन	....	८३

१. भगवान्‌से अपनापन

वास्तवमें हम सब परमात्माके हैं और यह संसार भी परमात्माका है; परन्तु जब हम इसपर कब्जा करना चाहते हैं, इसको अपना मान लेते हैं, तब हम इससे बँध जाते हैं। हमारी यह एक धारणा रहती है कि हमारे अधिकारमें जितनी वस्तुएँ और व्यक्ति आ जायँगे, उतने हम बड़े बन जायँगे, उन वस्तुओं और व्यक्तियोंके मालिक बन जायँगे; परन्तु यह धारणा बिलकुल गलत है।

जिन रुपये, परिवार आदिको हम अपना मान लेते हैं, उनके हम पराधीन हो जाते हैं, परवश हो जाते हैं। वहम तो यह होता है कि हम उनके मालिक बन गये, पर बन जाते हैं उनके गुलाम। यह बात खूब समझनेकी है, केवल सुनने-सुनानेकी नहीं है। आप स्वयं विचार करें। जिन मकानोंको आप अपने मकान मानते हैं, उन मकानोंकी ही आपको चिन्ता होती है। जिन मकानोंको आप अपना नहीं मानते, उनकी चिन्ता आपको नहीं होती। जिस परिवारको आप अपना मानते हैं, उसके बनने-बिगड़नेका आपपर असर होता है; और जिसको आप अपना नहीं मानते, उसके बनने-बिगड़नेका आपपर असर नहीं होता। ऐसे ही रुपये-पैसे, जमीन-जायदाद आदि वस्तुओंको आप अपनी मान लेते हैं, उनकी जिम्मेवारी, उनकी चिन्ता, उनके संचालन आदिका भार आपपर आ जाता है। जिनको आप अपना नहीं मानते, उनसे आपका बन्धन नहीं होता। इस युक्तिपर आप विचार करें।

संसारमें जो थोड़े-से मकान हैं, थोड़े-से व्यक्ति हैं, थोड़े-से रुपये (हजार, लाख, करोड़) हैं, उन मकानों, व्यक्तियों और रुपयोंमें ही आप बँधे हुए हैं। जिनको आप अपना नहीं मानते, उन मकानों, व्यक्तियों और रुपयोंसे आप बिलकुल मुक्त हैं। अतः संसारसे आपकी ज्यादा मुक्ति तो है ही, थोड़ी-सी मुक्ति बाकी है! मुक्ति नाम है छूटनेका। जिन रुपयों आदिको आप अपना नहीं मानते, उनसे आप बिलकुल छूटे हुए हैं। जिनमें आपकी ममता नहीं है, उनके हानि-लाभ आदिका आपपर असर नहीं पड़ता अर्थात् उनमें आप सम रहते हैं। वह चाहे सोना हो, चाहे मिट्टी या पत्थर हो, उसके आने-जानेका आपपर कोई असर नहीं पड़ता—'**समलोष्टाश्मकांचनः**' (गीता ६। ८)। इसी प्रकार मान-अपमान और मित्र-शत्रुके पक्षमें भी आपकी समता रहती है, उनका असर आपपर नहीं पड़ता—'**मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः**' (गीता १४। २५)।

वास्तवमें समता ही तत्त्व है। गीतामें कहा है—'**इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।**' (गीता ५। १९) अर्थात् जिनका मन समतामें स्थित है, उन्होंने इस जीवित-अवस्थामें ही सम्पूर्ण संसारको जीत लिया है। तात्पर्य है कि जिनके हृदयमें समता है, उनके हृदयमें वस्तुओंके बनने-बिगड़नेपर, आने-जानेपर कोई विषमता नहीं होती, पक्षपात नहीं होता, राग-द्वेष नहीं होते, हर्ष-शोक नहीं होते। वस्तुओं और व्यक्तियोंके आने-जानेसे हमारेपर किंचिन्मात्र भी असर नहीं पड़े, तब तो हम संसारपर विजयी हो गये; परन्तु उनके आने-जानेका असर पड़ता है तो हम संसारसे पराजित हो गये, हार गये। संसार विजयी हो गया हमपर। हार किसीको

भी अच्छी नहीं लगती, जीत सबको अच्छी लगती है। जिनका मन समतामें स्थित है, वे आज और अभी जीत सकते हैं, विजयी हो सकते हैं। यह एकदम सिद्धान्तकी और बिलकुल सच्ची बात है। गीता कहती है—'**निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिता:॥**' (५।१९) अर्थात् सच्चिदानन्दघन परमात्मा निर्दोष और सम हो गया, वे परमात्मामें ही स्थित हैं। कितनी विलक्षण बात है!

परमात्मतत्त्वको प्राप्त करना मनुष्यका खास ध्येय है। प्रत्येक भाई और बहन सब अवस्थाओंमें उस तत्त्वको प्राप्त कर सकते हैं; क्योंकि उस तत्त्वकी प्राप्तिके लिये ही यह मनुष्यशरीर मिला है। परन्तु हम नाशवान् चीजोंको अपनी मानकर फँस जाते हैं, बँध जाते हैं और अपने लक्ष्यसे वंचित हो जाते हैं। ये चीजें पहले भी अपनी नहीं थीं और पीछे भी अपनी नहीं रहेंगी—यह पक्की बात है। बीचमें उनको अपनी मानकर हम फँस जाते हैं। अगर हम उन चीजोंको अपनी न मानें, प्रत्युत उनको भगवान्‌की ही मानकर अच्छे-से-अच्छे, उत्तम-से-उत्तम व्यवहारमें लायें तो हम बन्धनमें नहीं पड़ेंगे। उन वस्तुओंमें हमारा अपनापन जितना-जितना छूटता चला जायगा, उतनी-उतनी हमारी मुक्ति होती चली जायगी।

प्रभुके साथ हमारा अपनापन सदासे है और सदा रहेगा। केवल हम ही भगवान्‌से विमुख हुए हैं, भगवान् हमसे विमुख नहीं हुए। हम भगवान्‌के हैं और भगवान् हमारे हैं—

अस अभिमान जाइ जनि भोरे।
मैं सेवक रघुपति पति मोरे॥

(मानस, अरण्य० ११।२१)

मीराबाई इतनी ऊँची हुई, इसका कारण उसका यह भाव था कि ***'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।'*** केवल एक भगवान् ही मेरे हैं, दूसरा कोई मेरा नहीं है।

सज्जनो! हम भगवान्के हो जाते हैं तो भगवान्की सृष्टिके साथ उत्तम-से-उत्तम बर्ताव करना हमारे लिये आवश्यक हो जाता है। यह सब सृष्टि प्रभुकी है, ये सभी हमारे मालिकके हैं—ऐसा भाव रखोगे तो उनके साथ हमारा बर्ताव बड़ा अच्छा होगा। त्यागका, उनके हितका, सेवाका बर्ताव होगा। इससे व्यवहार तो शुद्ध होगा ही, हमारा परमार्थ भी सिद्ध हो जायगा, हम संसारसे मुक्त हो जायँगे। अतः हम भगवान्के होकर भगवान्का काम करें। ये सब प्राणी भगवान्के हैं, इन सबकी सेवा करें। अपना यह भाव बना लें—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

सब-के-सब सुखी हो जायँ, सब-के-सब नीरोग हो जायँ, सबके जीवनमें मंगल-ही-मंगल हो, कभी किसीको दुःख न हो— ऐसा भाव हमारेमें हो जायगा तो दुनियामात्र सुखी होगी कि नहीं, इसका पता नहीं; परन्तु हम सुखी हो जायँगे, इसमें सन्देह नहीं।

आप थोड़ी कृपा करें, इस बातको ध्यानपूर्वक समझें। भक्तिमार्गमें तो केवल भाव बदलना है कि मैं भगवान्का हूँ और भगवान् मेरे हैं; संसार मेरा नहीं है और मैं संसारका नहीं हूँ। गीतामें आया है—**'अनन्याश्चिन्तयन्तो माम्'** (९।२२), **'अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः'** (८।१४)। अनन्य होकर भगवान्का चिन्तन

करनेका तात्पर्य यह है कि मैं केवल भगवान्‌का हूँ और केवल भगवान् मेरे हैं। ऐसा करनेवालेके लिये भगवान् कहते हैं—‘**तस्याहं सुलभः**’ अर्थात् जो अनन्यचेता होकर मेरा स्मरण करता है, उसको मैं सुलभतासे मिल जाता हूँ।

सज्जनो! जो व्यापार करना चाहता है, उसको यदि कोई बढ़िया बता दे तो वह उसे छोड़ेगा नहीं; क्योंकि उसमें लाभ बहुत होता है। ऐसे ही जो अपनी आध्यात्मिक उन्नति चाहता है, उसके लिये बड़ी श्रेष्ठ और सीधी-सादी बात यह है कि वह मैं भगवान्‌का हूँ, भगवान् मेरे हैं, यह मान ले। यह मान्यता अगर दृढ़ हो जाय तो आज ही पूर्णता हो सकती है। अगर इस मान्यताको मिटाओगे नहीं तो समय पाकर स्वतः ही पूर्णता हो जायगी। अतः इतनी कृपा करें, मेहरबानी करें कि ‘मैं भगवान्‌का हूँ और भगवान् मेरे हैं’—यह बात पक्की मान लें। सच्ची बात है, आपको धोखा नहीं देता हूँ। पहले आप भगवान्‌के थे, अन्तमें भगवान्‌के ही रहेंगे और अब भी भगवान्‌के ही हैं। आप मानें या न मानें, पर आप भगवान्‌के ही हैं—इसमें संदेह नहीं।

‘**सब मम प्रिय सब मम उपजाए**’ (मानस, उत्तर० ८६। ४)

‘**ईस्वर अंस जीव अबिनासी**’ (मानस, उत्तर० ११७। २)

‘**ममैवांशो जीवलोके**’ (गीता १५। ७)

—इस प्रकार भगवान् और सन्त सब कहते हैं कि यह जीव परमात्माका अंश है यद्यपि हम परमात्माके हैं ही, तथापि ‘हम परमात्माके हैं’ ऐसा जबतक नहीं मानेंगे, तबतक परमात्माके होते हुए भी लाभ नहीं ले सकेंगे। जबतक हम परमात्मासे विमुख रहेंगे, तबतक हमें शान्ति, प्रसन्नता नहीं मिलेगी, आनन्द नहीं मिलेगा।

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं।
जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥

(मानस, सुन्दर० ४४। २)

भगवान्‌के सम्मुख होते ही करोड़ों जन्मोंके पाप नष्ट हो जायँगे। अतः सज्जनो! आप कृपा करके यह बात मान लो कि हम भगवान्‌के हैं, हम और किसीके नहीं हैं। यहाँ शंका हो सकती है कि हम और किसीके नहीं होंगे तो दुनियाका पालन-पोषण कैसे होगा? माताएँ अपने बालकोंका पालन-पोषण कैसे करेंगी? इसका समाधान है कि अपना मानकर पालन करनेकी महिमा नहीं है। अपने बालकका पालन तो हरेक माता करती है, पर इसमें कोई बहादुरी नहीं है। दूसरा कोई ऐसा बालक है, जिससे हमारा न्याति-जातिका कोई सम्बन्ध नहीं है, जिस बेचारेके माँ-बाप नहीं रहे, उसका पालन करनेवाली माईके लिये लोग कहते हैं कि धन्य है यह! अपना नहीं होनेपर भी अपने बालककी तरह उसका पालन किया जाय तो महिमा होगी और शान्ति मिलेगी तथा बालकपर भी बड़ा असर पड़ेगा।

'कल्याण' के एक मासिक अंकमें बहुत पहले एक घटना छपी थी। एक गाँवकी बात है। वहाँ एक मुसलमानके घर बालक हुआ, पर बालककी माँ मर गयी। वह बेचारा बड़ा दुःखी हुआ। एक तो स्त्रीके मरनेका दुःख और दूसरा नन्हें-से बालकका पालन कैसे करूँ—इसका दुःख! पासमें ही एक अहीर रहता था। उसका भी दो-चार दिनका ही बालक था। उसकी स्त्रीको पता लगा तो उसने अपने पतिसे कहा कि उस बालकको ले आओ, मैं पालन करूँगी। अहीर उस मुसलमानके बालकको ले आया। अहीरकी स्त्रीने दोनों

बालकोंका पालन किया। उनको अपना दूध पिलाती, गोदमें रखती, प्यार करती। उसके मनमें द्वैधीभाव नहीं था कि यह मेरा बालक है और यह दूसरेका बालक है। जब वह बालक बड़ा हो गया, कुछ पढ़नेलायक हो गया, तो उसने उस मुसलमानको बुलाकर कहा कि अब तुम अपने बच्चेको ले जाओ और पढ़ाओ-लिखाओ, जैसी मर्जी आये, वैसा करो। वह उस बालकको ले गया और उसको पढ़ाया-लिखाया। पढ़-लिखकर वह एक अस्पतालमें कम्पाउण्डर बन गया। उधर संयोगवश अहीरकी स्त्रीकी छाती कुछ कमजोर हो गयी और उसके भीतर घाव हो गया। इलाज करवानेके लिये वे अस्पतालमें डॉक्टरके पास पहुँचे। डॉक्टरने बीमारी देखकर कहा इसको खून चढ़ाया जाय तो यह ठीक हो जायगी। खून कौन दे? परीक्षा की गयी। मुसलमानका वह लड़का, जो कम्पाउण्डर बना हुआ था, उसी अस्पतालमें था। दैवयोगसे उसका खून मिल गया। उस माईने तो उसको पहचाना नहीं, पर उस लड़केने उसको पहचान लिया कि यही मेरा पालन करनेवाली माँ है। बचपनमें उसका दूध पीकर पला था, इस कारण खूनमें एकता आ गयी थी। डॉक्टरने कहा, इसका खून चढ़ाया जा सकता है। उससे पूछा गया कि क्या तुम खून दे सकते हो? उसने कहा कि खून तो मैं दे दूँगा, पर दो सौ रुपये लूँगा। अहीरने उसको दो सौ रुपये दे दिये। उसने आवश्यकतानुसार अपना खून दे दिया। वह खून उस माईको चढ़ा दिया गया, जिससे उसका शरीर ठीक हो गया और वह अपने घर चली गयी।

कुछ दिनोंके बाद वह लड़का अहीरके घर गया और हजार-दो हजार रुपये माँके चरणोंमें भेंट करके बोला कि

आप मेरी माँ हैं। मैं आपका ही बच्चा हूँ। आपने ही मेरा पालन किया है। ये रुपये आप ले लें। उसने लेनेसे मना किया तो कहा कि ये आपको लेने ही पड़ेंगे। उसने अस्पतालकी बात याद दिलायी कि खूनके दो सौ रुपये मैंने इसलिये लिये थे कि मुफ्तमें आप खून नहीं लेतीं और खून न लेनेसे आपका बचाव नहीं होता। यह खून तो वास्तवमें आपका ही है। आपके दूधसे ही मैं पला हूँ, इसलिये मेरा यह शरीर और सब कुछ आपका ही है। मेरे रुपये शुद्ध कमाईके हैं। आपकी कृपासे मैं लहसुन और प्याज भी नहीं खाता हूँ। अपवित्र, गन्दी चीजोंमें मेरी अरुचि हो गयी है। अतः ये रुपये आपको लेने ही पड़ेंगे। ऐसा कहकर उसने रुपये दे दिये। अहीरकी स्त्री बड़े शुद्ध भाववाली थी, जिससे उसके दूधका असर ऐसा हुआ कि वह लड़का मुसलमान होते हुए भी अपवित्र चीज नहीं खाता था।

आप विचार करें। जितनी माताएँ हैं, सब अपने-अपने बच्चोंका पालन करती ही हैं। हम सबका पालन बहनों-माताओंने ही किया है। परन्तु उनकी कोई कथा नहीं सुनाता, कोई बात नहीं करता। अहीरकी स्त्रीकी बात आप और हम करते हैं। उसका हमपर असर पड़ता है कि कितनी विशेष दया थी उसके हृदयमें! उसके मनमें यह भेद-भाव नहीं था कि दूसरेके बच्चेका मैं कैसे पालन करूँ? इसलिये आज हमलोग उसका गुण गाते हैं कि कितनी श्रेष्ठ माँ थी, जिसने दूसरे बालकका भी पालन किया और पालन करके उसके पिताको सौंप दिया! अपने बच्चोंका पालन तो कुतिया भी करती है, इसमें क्या बड़ी बात है?

चाहे तो अपने बालकोंको अपना न मानकर (ठाकुरजीका

मानकर) पालन करो और चाहे जो अपने बालक नहीं हैं, उनका पालन करो तो बड़ा पुण्य होगा। परन्तु ममता करनेसे यह पुण्य खत्म हो जाता है। मैं अपने बच्चोंका पालन करूँ, अपने जनोंकी रक्षा करूँ—यह अपनापन ही आपके पुण्यका भक्षण कर जाता है। इसलिये सज्जनो! आप कृपा करके अपने कुटुम्बको भगवान्‌का मानें। छोटे-बड़े जितने हैं, सब प्रभुके हैं। उनकी सेवा करें और प्रभुसे कहें कि हे नाथ! हम आपके ही जनोंकी सेवा करते हैं यदि आप ऐसा करने लग जायँ तो भगवान्‌पर इसका अहसान हो जाय। भगवान् भी कहेंगे कि हाँ भाई, मेरे बालकोंका पालन किया। आप ममता करेंगे तो भगवान्‌पर कोई अहसान नहीं। अपने बच्चोंका पालन तो सब करते हैं। केवल यह भाव रखें कि ये हमारे नहीं हैं ये ठाकुरजीके हैं। जीवन सफल हो जायगा सज्जनो!

गीतामें कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग—इन तीनोंमें ही ममता और अहंताके त्यागकी बात आयी है—

(१) निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति॥

(२। ७१)

(२) अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते॥

(१८। ५३)

(३) निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी॥

(१२। १३)

ये मेरे नहीं हैं, संसारके हैं—इस प्रकार संसारके माननेसे 'कर्मयोग' हो जायगा। ये मेरे नहीं हैं, प्रकृतिमात्रके हैं—इस प्रकार प्रकृतिके माननेसे 'ज्ञानयोग' हो जायगा। ये मेरे नहीं

हैं, ठाकुरजीके हैं—इस प्रकार भगवान्‌के माननेसे 'भक्तियोग' हो जायगा। ये मेरे हैं—इस प्रकार अपना माननेसे 'जन्म-मरणयोग' हो जायगा अर्थात् जन्मो, फिर मरो, मरकर फिर जन्म लो—इस तरह जन्म-मरणके साथ सम्बन्ध हो जायगा। आपकी ममता जहाँ रह जायगी, वहीं जन्म होगा। ममता नहीं रहेगी तो जन्म-मरणके चक्रसे मुक्ति हो जायगी। कितनी सरल और बढ़िया बात है!

श्रोता—बढ़िया बात तो है, पर होती नहीं!

स्वामीजी—होती नहीं, ऐसी बात नहीं है। आप इसको आज, अभी मान लें तो अभी हो जायगी। आप यह तो मानते ही हैं कि मैं धोखा नहीं देता हूँ और सन्तोंकी, शास्त्रोंकी, गीताजीकी बात कहता हूँ। बड़ी-बूढ़ी माताओंसे पूछो। जब वे छोटी बच्ची थीं, तब वे अपने पिताके घरको अपना घर मानती थीं। उस घरमें उनकी ममता थी कि यह मेरा घर है। परन्तु विवाह होनेके बाद वे पतिके घरको अपना घर मानने लग गयीं। ससुरालवाले अपने हो गये। अतः मेरापन बदलना तो आपको आता ही है। ससुरालमें रहते-रहते वह इतनी रच-पच जाती है कि उसको यह खयाल ही नहीं आता कि मैं कभी इस घरकी नहीं थी। परिवार फैल जाता है, बेटे-पोते हो जाते हैं। पोतेका विवाह होता है और उसकी बहू आकर घरमें खटपट मचाती है तो वह बूढ़ी दादी माँ कहती है कि इस परायी जायी छोकरीने आकर मेरा घर बिगाड़ दिया—***'घर खोयो परायी जायी!'*** अब उस बूढ़ी माँसे कोई पूछे कि यह तो परायी जायी है, पर आप यहीं जन्मी थीं क्या? उसको याद ही नहीं कि मैं तो परायी जायी हूँ! वह यही मानती है कि

मैं तो यहाँकी ही हूँ। बोलो, अपनापन बदल गया कि नहीं? वह परायी जायी छोकरी भी एक दिन कहेगी कि यह मेरा घर है। आज आप उसको भले ही परायी जायी कह दो, पर यह घर भी उसका हो जायगा। माताओ! जो घर अपना नहीं था, वह घर भी अपना हो गया, फिर भगवान्‌का घर तो पहलेसे ही अपना है! भगवान् कहते हैं—

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।

हम सब-के-सब उस परमात्माके अंश हैं, उस प्रभुके लाड़ले पुत्र हैं। हम चाहे कपूत हों या सपूत, पर हैं प्रभुके ही।

कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति॥

पुत्र तो कुपुत्र हो सकता है, पर माता कभी कुमाता नहीं होती। ऐसे ही हमारे प्रभु कभी कुमाता-कुपिता नहीं होते। वे देखते हैं कि यह अभी बच्चा है, गलती कर दी; परन्तु फिर प्यार करनेके लिये तैयार!

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

(गीता ९। ३०)

दुराचारी-से-दुराचारी मनुष्य भी यदि भगवान्‌के भजनमें अनन्यभावसे लग जाय कि 'मैं तो भगवान्‌का हूँ और भगवान् मेरे हैं' तो उसको साधु ही मानना चाहिये। वह बहुत जल्दी धर्मात्मा बन जाता है और निरन्तर रहनेवाली शान्तिको प्राप्त हो जाता है—'**क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति**' (गीता ९। ३१)। यह सच्ची बात है।

संसारके हम नहीं हैं, संसार हमारा नहीं है। संसारके साथ अपनापन हमने किया है। वास्तवमें तो हम सदासे भगवान्‌के

हैं और भगवान् हमारे हैं। हम भले ही भूल जायँ, पर भगवान् हमें भूले नहीं हैं। हम चाहे भगवान्से विमुख हो जायँ, पर भगवान् हमारेसे विमुख नहीं हुए हैं। भगवान् कहते हैं—***'सब मम प्रिय सब मम उपजाए'*** (मानस, उत्तर० ८६।२) सब-के-सब मेरेको प्यारे लगते हैं। इसलिये सज्जनो! हम सब भगवान्‌के लाड़ले हैं, उनके प्यारे हैं!

अर्जुनने पूरी गीता सुननेके बाद क्या कहा? **'नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा'** (१८।७३) मोह नष्ट हो गया और स्मृति मिल गयी, याद आ गयी। जो भूल हो गयी थी, वह याद आ गयी कि मैं तो आपका हूँ। अब क्या करोगे? तो कहा—**'करिष्ये वचनं तव'** आप जो कहोगे, वही करूँगा। मैं तो आपका हूँ ही, पहले भूल गया था, अब वह भूल मिट गयी।

हम सदासे परमात्माके ही हैं। शरीर संसारसे मिला है। जिन माता-पितासे यह शरीर मिला है, उनकी सब तरहसे सेवा करना, सुख पहुँचाना, आदर करना हमारा कर्तव्य है। पर हम स्वयं परमात्माके ही हैं। इस बातको ज्ञानी भक्त प्रह्लादजी जानते थे। पिताजी कहते हैं कि तुम भगवान्‌का नाम मत लो, उनका भजन मत करो; यदि करोगे तो मार दिये जाओगे। परन्तु प्रह्लादजी इस बातसे भयभीत नहीं होते। उनके पिता हिरण्यकशिपुने अपनी स्त्री कयाधूसे कहा कि तू अपने लड़केको जहर पिला दे। कयाधू पतिव्रता थी। उसकी गोदमें प्रह्लाद है और हाथमें जहरका प्याला। माँके द्वारा बच्चेको जहर पिलाया जाना बड़ा कठिन काम है। प्रह्लादजी अपनी माँसे कहते हैं कि माँ! तू मेरेको जहर पिला दे तो तेरे भी धर्मका पालन हो जायगा और मेरे भी धर्मका पालन

हो जायगा। प्रह्लादजी जहर पी गये, पर मरे नहीं; क्योंकि उनको भगवान्‌पर पूरा भरोसा था। उन्होंने पिताजीकी आज्ञाको भंग नहीं किया। उनको समुद्रमें डुबाने लगे तो उन्होंने यह नहीं कहा कि मेरेको समुद्रमें क्यों डुबाते हो? वे वहाँसे बच गये तो उनके ऊपर वृक्ष और पत्थर डाल दिये गये। उनको पहाड़से गिराया गया, हाथीसे कुचलवाया गया, अस्त्र-शस्त्रोंसे काटनेकी चेष्टा की गयी, पर वे मरे नहीं। प्रह्लादजीने कभी यह नहीं कहा कि आप मेरेको मारते क्यों हो? परन्तु भगवान्‌का भजन नहीं छोड़ा।

पिताजीने उनको शुक्राचार्यजीके पुत्र शण्डामर्कके पास भेजा। वहाँपर वे पढ़ाई नहीं करते। गुरुजी जब बाहर जाते, तब वे पाठशाला बना देते। वे राजकुमार थे; अतः सब लड़के उनके कहनेसे भजन करते। गुरुजीने देखा कि प्रह्लादजीने तो पाठशालाको भजनशाला बना दिया; अतः वे हिरण्यकशिपुके पास जाकर बोले कि महाराज! आपका लड़का खुद तो बिगड़ा ही है, दूसरे लड़कोंको भी बिगाड़ रहा है। हिरण्यकशिपुने प्रह्लादजीको बुलाकर पूछा कि तेरी यह खोटी बुद्धि कहाँसे आयी है? स्वतः पैदा हुई है या किसीने तेरेको सिखायी है? प्रह्लादजीने कहा कि पिताजी! ऐसी बुद्धि न तो स्वतः पैदा होती है और न इसको कोई सिखा सकता है। यह तो सन्त-महात्माओंकी कृपासे मिलती है।

बचपनमें प्रह्लादजीपर नारदजी महाराजकी कृपा हुई थी। प्रह्लादजी जब माँके गर्भमें थे, तब इन्द्रने आकर लूटपाट की और कयाधूको ले गया। हिरण्यकशिपु उस समय तपस्याके लिये वनमें गया हुआ था। जब इन्द्र कयाधूको लेकर जा रहा

था, तब रास्तेमें नारदजी मिले। नारदजीने कहा कि इस अबलाको क्यों दुःख दे रहा है? इस बेचारीने क्या अपराध किया है? इन्द्र बोला कि महाराज! इसके पेटमें मेरे शत्रु हिरण्यकशिपुका अंश है। उसने अकेले ही हमें इतना तंग कर दिया है, जब दो हो जायँगे, तब बड़ी मुश्किल हो जायगी! इसलिये मैं कयाधूको ले जाता हूँ। जब इसका बच्चा जन्मेगा, तब मैं उसको मार दूँगा, कयाधूको कुछ नहीं कहूँगा। नारदजीने कहा कि इसका जो बच्चा होगा, वह तेरा वैरी नहीं होगा। नारदजीका बात राक्षस, असुर, देवता, मनुष्य सब मानते हैं; क्योंकि वे सन्त जो ठहरे। सन्तोंपर सबका विश्वास होता है। इन्द्रने उनकी बात मान ली और कयाधूको छोड़ दिया। नारदजीने कयाधूको एक कुटियामें रखा और कहा कि बेटी! तुम चिन्ता मत करो और यहींपर आनन्दसे रहो। जैसे पिताके घर लड़की प्यारसे रहती है, ऐसे ही वह भी वहाँ रहने लग गयी। नारदजी उसके गर्भको लक्ष्यमें रखकर भगवान्‌की कथाएँ सुनाते थे। इसके गर्भमें जो बालक है, वह भगवान्‌का भक्त बन जाय— इस भावसे वे सत्संगकी बड़ी अच्छी-अच्छी बातें सुनाते थे।

माता घट रह्यो न लेश नारदके उपदेशको।
सो धार्‌यो अशेष गर्भ मांहि ज्ञानी भयो॥

नारदजीका उपदेश माँको तो याद नहीं रहा, पर प्रह्लादजीने गर्भमें ही उस उपदेशको धारण कर लिया। वे वहींसे भक्त बन गये। भक्त बननेसे उनके हृदयमें यह बात आ गयी कि मैं स्वयं तो वास्तवमें परमात्माका ही हूँ और यह शरीर माता-पिताका है। माता-पिता यदि इस शरीरके टुकड़े-टुकड़े भी करें तो भी मेरेको बोलनेका कोई अधिकार

नहीं है; क्योंकि शरीर इनका दिया हुआ है। परंतु मैं स्वयं साक्षात् परमात्माका अंश हूँ; अतः परमात्मासे हटानेका इनको अधिकार नहीं है। मैं परमात्माकी तरफ लगूँ और यह शरीर माता-पिताकी सेवामें लगे।

सज्जनो! यह शरीर माता-पिताका है। इसलिये माता-पिताकी खूब सेवा करो, सब तरहसे उनको सुख पहुँचाओ, उनका आदर-सत्कार करो। वास्तवमें सेवा करके भी आप उऋण नहीं हो सकते। माँके ऋणसे कोई भी उऋण नहीं हो सकता। संसारमें जितने भी सम्बन्ध हैं, उनमें सबसे बढ़कर माँका सम्बन्ध है। इस शरीरका ठीक तरहसे पालन-पोषण जैसा माँ करती है, वैसा कोई नहीं कर सकता—'**मात्रा समं नास्ति शरीरपोषणम्।**' इसलिये कहा गया है—

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था वसुन्धरा पुण्यवती च तेन।
अपारसंवित्सुखसागरेऽस्मिन् लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः॥

(स्कन्दपुराण, माहे० कौमार० ५५। १४०)

अर्थात् जिसका अन्तःकरण परब्रह्म परमात्मामें लीन हो गया है, उसका कुल पवित्र हो जाता है, उसकी माता कृतार्थ हो जाती है, और यह सम्पूर्ण पृथ्वी महान् पवित्र हो जाती है।

जननी जणे तो भक्त जण, कै दाता कै सूर।
नहिं तो रहजे बाँझड़ी, मती गमाजे नूर॥

मैंने सन्तोंका बधावा बोलते समय सुना है—'***धिन जननी ज्यांरे ए सुत जाया ए, सोहन थाल बजाया ए।***' जिस माताने ऐसे भक्तको जन्म दिया है, वह धन्य है! कारण कि बालकपर माँका विशेष असर पड़ता है। प्रायः देखा जाता है कि माँ श्रेष्ठ होती है तो उसका पुत्र भी श्रेष्ठ होता है।

इसलिये जिसका मन भगवान्में लग जाता है, उसकी माँ कृतार्थ हो जाती है।

आप दान-पुण्य करके, बड़ा उपकार करके इतना लाभ नहीं ले सकते, जितना लाभ भगवान्के चरणोंकी शरण होनेसे ले सकते हैं। कारण कि परमात्माके साथ हमारा अकाट्य अटूट सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध कभी भी टूट नहीं सकता। इस सम्बन्धको जीव ही भूला है, भगवान् नहीं भूले। इसलिये जीवके ऊपर ही भगवान्की तरफ चलनेकी जिम्मेवारी है। भगवान् तो अपनी ओरसे कृपा कर ही रहे हैं, चाहे वह कैसा ही क्यों न हो। भगवान् सबका पालन, भरण-पोषण करते हैं। पापीको भी दण्ड देकर सुधारते हैं, नरकोंमें डालकर पवित्र करते हैं। इस तरह भगवान् तो सम्पूर्ण जीवोंका पालन-पोषण करनेमें, उनको पवित्र करनेमें लगे हुए हैं। भगवान् कहते हैं—

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं।
जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥

(मानस, सुन्दर० ४४। २)

जीव ही भगवान्से विमुख हुआ है, इसलिये इसपर ही भगवान्के सम्मुख होनेकी जिम्मेवारी है। जहाँ सम्मुख हुआ कि बेड़ा पार! इसलिये हम प्रभुके चरणोंकी शरण हो जायँ और अपनी अहंता बदल दें कि हम परमात्माके हैं। जैसे बहनें-माताएँ अपनी अहंता बदल देती हैं कि मैं अब इस घरकी नहीं हूँ; जहाँ विवाह हुआ है, उस घरकी हूँ। उनका गोत्र बदल जाता है, पिताका गोत्र नहीं रहता। कई जगह ऐसी बात आती है कि घरमें कोई बालक पैदा हुआ और सूतक लगनेके कारण हम ठाकुरजीकी सेवा नहीं कर सकते,

तो कहते हैं कि तुम्हारी जो विवाहित लड़की घरपर है, वह सेवा कर देगी; क्योंकि उसको सूतक नहीं लगता, उसका गोत्र दूसरा है। वही लड़की आपके घरमें है और उसके ससुरालमें बालक पैदा हुआ तो आप उसको कहते हैं कि देख बेटी, जलको हाथ मत लगाना। वह खास अपनी बेटी है, पर उसके ससुरालमें बालक पैदा होनेसे उसको सूतक लगता है। ऐसे ही आप अपनी अहंता बदल दें कि हम तो भगवान्‌के हैं तो आप वास्तविकतातक पहुँच जायँगे।

हम अपनी तरफसे भगवान्‌को अपना मानते नहीं पर भगवान् अपनी तरफसे हमें अपना मानते हैं। मानते ही नहीं, जानते भी हैं। बच्चा माँको अपनी माँ मानता है, पर कभी-कभी अड़ जाता है कि तू मेरा कहना नहीं मानती तो मैं तेरा बेटा नहीं बनूँगा। माँ हँसती है; क्योंकि वह जानती है कि बेटा तो मेरा ही है। बच्चा समझता है कि माँको मेरी गरज है, बेटा बनना माँको निहाल करना है, इसलिये कहता है कि तेरा बेटा नहीं बनूँगा, तेरी गोदमें नहीं आऊँगा। परन्तु बेटा नहीं बननेसे हानि किसकी होगी? माँका क्या बिगड़ जायगा? माँ तो बच्चेके बिना वर्षोंसे जीती रही है, पर बच्चेका निर्वाह माँके बिना कठिन हो जायगा। बच्चा उलटे माँपर अहसान करता है। ऐसे ही हम भी भगवान्‌पर अहसान कर सकते हैं!

भगवान्‌के एक बड़े प्यारे भक्त थे, नाम याद नहीं है। वे रात-दिन भगवद्‌भजनमें तल्लीन रहते थे। किसीने उनके लिये एक लंबी टोपी बनायी। उस टोपीको पहनकर वे मस्त होकर कीर्तन कर रहे थे। कीर्तन करते-करते वे प्रेममें इतने मग्न हो गये कि भगवान् स्वयं आकर उनके पास बैठ गये

और बोले कि भगतजी! आज तो आपने बड़ी ऊँची टोपी लगायी! वे बोले कि किसीके बापकी थोड़े ही है, मेरी है। भगवान्‌ने कहा कि मिजाज करते हो? तो बोले कि माँगकर थोड़े ही लाये हैं मिजाज? भगवान्‌ने पूछा कि मेरेको जानते हो? वे बोले कि अच्छी तरहसे जानता हूँ। भगवान् बोले कि यह टोपी बिक्री करते हो क्या? वे बोले कि तुम्हारे पास देनेको है ही क्या जो आये हो खरीदनेके लिये? त्रिलोकी ही तो है तुम्हारे पास, और देनेको क्या है? भगवान् बोले कि इतना मिजाज! तो वे बोले कि किसीका उधार लाये हैं क्या? भगवान्‌ने कहा कि देखो, मैं दुनियासे कह दूँगा कि ये भगत-वगत कुछ नहीं हैं तो दुनिया तुम्हारेको मानेगी नहीं। वे बोले कि अच्छा, आप भी कह दो, हम भी कह देंगे कि भगवान् कुछ नहीं हैं। आपकी प्रसिद्धि तो हमलोगोंने की है, नहीं तो आपको कौन जानता है? भगवान्‌ने हार मान ली!

माँके हृदयमें जितना प्रेम होता है उतना प्रेम बच्चोंके हृदयमें नहीं होता। ऐसे ही भगवान्‌के हृदयमें अपार स्नेह है। अपने स्नेहको, प्रेमको वे रोक नहीं सकते और हार जाते हैं! *'और सबसों गये जीत, भगतसे हार्‌यो'* कितनी विलक्षण बात है! ऐसे भगवान्‌के हो जाओ। दूसरोंके साथ हमारा सम्बन्ध केवल उनकी सेवा करनेके लिये है। उनको अपना नहीं मानना है। अपना केवल भगवान्‌को मानना है। भगवान्‌की भी सेवा करनी है, पर उनसे लेना कुछ नहीं है।
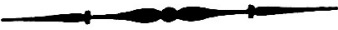
आपकी कन्या आपकी अहंता बदल देती है, अपनेको दूसरे घरकी बहू मान लेती है। क्या आप अपनी अहंता नहीं बदल सकते? क्या आपमें उस कन्या जितनी सामर्थ्य भी

नहीं है ? जिस कन्याका आपने पालन-पोषण किया, बड़ी धूमधामसे विवाह किया, उस कन्याके बदलनेपर (दूसरे घरको अपना माननेपर) भी आप नाराज नहीं होते। ऐसे ही आप अपनेको भगवान्‌का और भगवान्‌को अपना मान लें तो कोई नाराज नहीं होगा; क्योंकि यह सच्ची बात है। मीराबाईने कहा—**'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।'** गिरधर गोपालके सिवाय मेरा कोई नहीं है और मैं किसीकी नहीं हूँ।

आप नौकरी करो तो आपकी योग्यताके अनुसार आपको तनख्वाह मिलेगी। परन्तु आप घरमें माँके पास जाओ तो क्या माँ आपकी योग्यताके अनुसार रोटी देगी। आप काम करो तो भी वह रोटी देगी और काम न करो तो भी रोटी देगी। इस तरह भजन करनेसे ही भगवान्‌से सम्बन्ध होगा, भजन न करनेसे सम्बन्ध नहीं होगा—यह बात नहीं है। यदि आप भगवान्‌से अपनापन कर लेंगे कि हे नाथ! मैं तो आपका ही हूँ, तो भगवान् सोचेंगे कि यह चाहे जैसा भी है, अपना ही बालक है! अतः भगवान्‌को आपका पालन करना ही पड़ेगा। इसलिये 'मैं तो आपका ही हूँ और आप ही मेरे हैं'—यह बड़ा सीधा रास्ता है।

भगवान् कहते हैं कि यह जीव है तो मेरा ही अंश, पर प्रकृतिमें स्थित शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धिको खींचता है, उनको अपना मानता है (गीता १५। ७)! अरे! किस धंधेमें तू लग गया! है कहाँका और कहाँ लग गया! संसारकी सेवा करो। अपने तन, मन, धन, बुद्धि, योग्यता, अधिकार आदिसे दूसरोंको सुख पहुँचाओ, पर उनको अपना मत मानो। यह अपनापन टिकेगा नहीं। केवल सेवा करनेके लिये

ही वे अपने हैं। संसारकी जिन चीजोंमें अपनापन कर लेते हैं, वे ही हमें पराधीन बनाती हैं। वहम होता है कि इतना परिवार मेरा, इतना धन मेरा, पर वास्तवमें ये तेरे नहीं हैं, तू इनका हो गया, इनके पराधीन हो गया! न तो ये हमारे साथ रहेंगे और न हम इनके साथ रहेंगे। इसलिये बड़े उत्साह और तत्परतासे इनकी सेवा करो तो दुनिया भी राजी हो जाय और भगवान् भी राजी हो जायँ! आप भी सदा आनन्दमें, मौजमें रहें! जब सेवा करनेवाला नहीं मिलता, तब सेवा चाहनेवाला दुःखी रहता है। परन्तु सेवा करनेवाला सदा सुखी रहता है, आनन्दमें रहता है।

२. सदुपयोगसे कल्याण

मनुष्योंने वस्तुओंको, व्यक्तियोंको, परिस्थितियोंको बड़ा महत्त्व दे दिया है; परन्तु वास्तवमें इनका महत्त्व नहीं है। महत्त्व इनके उपयोगका है। इनका सदुपयोग और दुरुपयोग दोनों हो सकते हैं। अगर सदुपयोग किया जाय तो हरेक देश, काल, वस्तु व्यक्ति, घटना परिस्थिति आदि मनुष्यका कल्याण करनेवाली हो जाती है। सदुपयोग या दुरुपयोग करनेमें मनुष्य स्वतन्त्र है। परिस्थिति आदिको अपने अनुकूल बनानेमें कोई भी स्वतन्त्र नहीं है।

प्रायः मनुष्य वस्तुओंको ही ज्यादा महत्त्व देते हैं, उनके सदुपयोगकी तरफ ध्यान नहीं देते। इस कारण वे परतन्त्र हो जाते हैं, फँस जाते हैं। उनके सामने 'क्या करें? कैसे करें?'—ऐसी विकट परिस्थिति आ जाती है। इससे बचनेके लिये इस बातको सीखनेकी आवश्यकता है कि उनका सदुपयोग कैसे किया जाय? परिस्थितियाँ तो मनुष्यके सामने आती-जाती रहती हैं, बदलती रहती हैं। न तो कोई परिस्थिति एक समान रहती है, न वस्तुएँ एक समान रहती हैं, न व्यक्ति एक समान रहते हैं, न अवस्था एक समान रहती है। ये सब बदलते रहते हैं। अगर इन बदलनेवालोंका अच्छे-से-अच्छा उपयोग किया जाय तो ये सब कल्याण करनेवाले हो जायँगे।

सबसे पहले एक बात समझनेकी है। आप और आपकी

परिस्थिति, आप और आपकी वस्तु, आप और आपकी अवस्था, आप और आपका समुदाय, आप और आपका देश, आप और आपका समय—ये दोनों अलग-अलग हैं। तात्पर्य है कि उत्पन्न और नष्ट होनेवाली जितनी भी चीजें हैं, वे सब प्रकृतिकी अंश हैं और आप परमात्माके अंश हैं। आप नित्य-निरन्तर रहनेवाले हैं। परन्तु प्रकृतिसे उत्पन्न चीजें नित्य-निरन्तर बदलनेवाली हैं, कभी एक क्षण भी एकरूप रहनेवाली नहीं हैं। इनका संयोग और वियोग हरदम होता रहता है। नदीके प्रवाहकी तरह इनका प्रवाह हरदम चलता रहता है।

आप रहनेवाले हैं—'**नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः**' (गीता २। २४)। आप अनादिकालसे अचल हैं और ये सब (शरीर-संसार) चल हैं। चल वस्तुओंको लेकर अचलपर असर क्यों पड़ जाता है? क्योंकि चल वस्तुओंके साथ अचल अपना सम्बन्ध जोड़ लेता है। शरीर और शरीरमें रहनेवाले आप—ये दो हैं। आप शरीर नहीं हैं और शरीर आपका नहीं है। परन्तु गलती यह हुई कि आपने शरीरमें अहंता-ममता कर ली। अपनेको शरीरमें बैठा दिया तो 'अहंता' पैदा हो गयी और शरीर आदि वस्तुओंको अपनेमें बैठा लिया तो 'ममता' पैदा हो गयी। मैं शरीर हूँ—ऐसा मान लेनेसे अहंता पैदा हो जाती है और शरीर आदि वस्तुएँ मेरी हैं—ऐसा मान लेनेसे ममता पैदा हो जाती है। अहंताको लेकर भेदभाव होता है और ममताको लेकर संघर्ष होता है। ये दोनों ही बन्धनकारक हैं।

सन्त-महात्माओंने मैं-मेरीका त्याग करनेके लिये कहा है।

वस्तुओंका त्याग तो स्वतः ही हो रहा है। संसारकी मात्र वस्तुएँ प्रतिक्षण आपसे विमुक्त हो रही है। यह बात बहुत खयाल करनेकी, जाननेकी, समझनेकी है। मेरे मनमें तो ऐसी बात आती है कि रोजाना ही इस बातको कह लें, सुन लें और रोजाना विचार करें। यह दृश्यमात्र अदृश्य होनेवाला है। यह दर्शन अदर्शनमें भर्ती हो रहा है। सब-का-सब संसार मौतकी तरफ जा रहा है, प्रलयकी तरफ जा रहा है। सम्पूर्ण सृष्टि महाप्रलयकी तरफ जा रही है। जितने दिन व्यतीत होते हैं, उतने ही हम मौतके नजदीक जाते हैं। एक दिन कुछ भी नहीं रहेगा और वह दिन भी नजदीक आ रहा है! जितने भी शरीर हैं, सब-के-सब प्रतिक्षण मरनेकी तरफ जा रहे हैं। दूसरा कोई काम होगा कि नहीं होगा—इसमें सन्देह है, पर मरना होगा कि नहीं होगा—इसमें कोई सन्देह, विकल्प नहीं है। भविष्यकी बात कोई नहीं कह सकता कि क्या होगा, कैसे होगा, होगा कि नहीं होगा; परन्तु 'मरना होगा'—यह बात बिलकुल निःशंक, निधड़क होकर कही जा सकती है।

बन्धन क्या है? न बदलनेवालेने बदलनेवालेके साथ एकता मान ली—यही बन्धन है। अगर कोई विवेकी पुरुष बदलनेवाले और न बदलनेवालेको अलग-अलग देख ले अर्थात् बदलनेवाला मेरा स्वरूप नहीं है, मेरा स्वरूप तो न बदलनेवाला है—ऐसा अनुभव कर ले तो आज ही मुक्त हो जाय। इस बातका ठीक-ठीक ज्ञान होना चाहिये। केवल सीखना नहीं है। पुस्तकोंसे हम सीख सकते हैं, सीखकर पण्डित कहला सकते हैं, पर वास्तवमें सीखनेवाला पण्डित नहीं होता, ठीक-ठीक जाननेवाला ही पण्डित होता

है। सीखनेसे काम नहीं बनेगा। सीखनेवाला तोतेकी तरह होता है। तोतेको सिखा दो तो वह 'राधेकृष्ण-गोपीकृष्ण' बोलना सीख जायगा और जब बुलवाओगे, तब बोल देगा। परन्तु जब कोई बिल्ली मारने आयेगी, तब वह 'टें-टें' करने लगेगा। अरे, अब तो 'राधेकृष्ण-गोपीकृष्ण' बोल, अन्तसमयमें भगवान्‌का नाम ले, जिससे उद्धार हो जाय! पर वह समझता ही नहीं कि भगवान्‌का नाम क्या होता है?

सीखा हुआ भी भगवान्‌का नाम आ जाय तो कल्याण हो जाता है। ऐसी कथाएँ पुराणोंमें आती हैं। '**गोविन्दनामग्रहण-मशेषाघहरं विदुः**'—किसी कारणसे अन्तसमयमें भगवान्‌का नाम आ जाय तो सब पाप नष्ट हो जाते हैं। एक वेश्या अपने तोतेको 'राधेकृष्ण-गोपीकृष्ण' बोलना सिखा रही थी कि अचानक साँपने आकर काट लिया। वह 'राधेकृष्ण-गोपीकृष्ण' कहती रही और उसका उद्धार हो गया। सन्तोंकी वाणीमें भी ऐसी कई कथाएँ आती हैं। एक बार एक बधिक पशु-पक्षियोंको मारनेके लिये धनुष-बाण लेकर जंगलमें घूम रहा था। एक पेड़पर पपीहा बैठा था। इधर तो बधिक उसके ऊपर बाणका निशाना लगाता है और उधर एक बाज उसी पपीहेको मारनेके लिये धावा बोलता है। ऐसे संकटमें पपीहेने भगवान्‌को याद किया। पूर्वजन्मके संस्कारसे पशु-पक्षियोंमें भी ऐसी बात आ जाती है, जो मनुष्योंमें भी नहीं आती। कबके संस्कार न जाने कब जाग्रत् हो जायँ—इसका पता नहीं चलता। अचानक उस वृक्षमेंसे एक साँप निकला और उसने बधिकको काट लिया। साँपके काटते ही बधिकका

हाथ हिला और बाण छूट गया। वह बाण आकर बाजको लगा। बधिक और बाज—दोनों मर गये और पपीहेकी रक्षा हो गयी।

चातक तरु ठाणे शिर अरि जाणे पारधि बाणे दिसताणे।
जाकूँ अहि हाणे शर छूटाणे जाय लगाणे सीचाणे॥
पप्पीह तु प्राणे टल विधनाणे हरिहि पिछाणे निजहेतम्।
ब्रह्म हो अविनाशी आनंदराशी दोषविनाशी सुखदेतम्॥

(करुणानिधान १५)

एक बधिकने वनमें एक मृगको मारा और उसको उठाकर चला। रास्तेमें प्यास और थकावटसे व्याकुल होकर वह एक पेड़की छायामें आकर बैठ गया। उस वृक्षपर एक पालतू तोता बैठा हुआ था, जो पिंजड़ेसे निकलकर भाग आया था। इतनेमें एक साँप निकला और उसने बधिकको काट लिया। वहाँ उसे तोतेने दो बार 'राम-राम' कहा—बधिकने भगवान्‌का नाम सुना तो उसके मुखसे भी दो बार 'राम-राम' निकला और वह मर गया। मरनेपर उसे ले जानेके लिये यमराजके दूत आये, पर उधरसे उसे वैकुण्ठमें ले जानेके लिये भगवान्‌के पार्षद भी आ गये। यमदूतोंने उनको रोका और कहा कि इसको कैसे ले जाते हो? इसने तो बहुत जीवोंको मारा है, बहुत पाप किये हैं। इसलिये यह नरकोंमें जायगा। भगवान्‌के पार्षदोंने कहा कि इसने अन्तसमयमें भगवान्‌का नाम लिया है, इसलिये इसका कल्याण होगा। दोनोंमें विवाद छिड़ गया। फैसला करनेके लिये सम्पूर्ण पापोंको और नामको तौला गया तो नाम बड़ा वजनदार निकला। अतः बधिकको निर्भय धाम मिल गया—

व्याध एक मारियो मिरग, व्याल डस्यो तरु छाँय।
तृषा मरत शुक सुनि गिरा, नाम प्रगट उर माँय॥

उभय वार श्रवणां सुणे, उभय वार मुख गाय।
अन्तकाल ऐसो भयो, ततछिन भए सहाय॥

जमकिंकर बंधे महा, बंध छुड़ाई ताय।
हरिपुरवासी आय के, लेखै न्याव चुकाय॥

एके चेलै अघ सबै, एके चेलै नाम।
ऐसी विधि भव तारणा, निर्भय दीधो धाम॥

(करुणासागर ६७—७०)

भगवान्‌का नाम अपार, अनन्त शक्ति रखता है। उसके सामने पाप कितने हैं—ऐसी गणना नहीं हो सकती। जैसे, किलोभर रूईको जलानेके लिये एक दियासलाई होनी चाहिये तो कुन्तलभर रूईको जलानेके लिये चालीस दियासलाई होनी चाहिये? नहीं। एक ही दियासलाई सबको जला देगी। वहाँ यह माप-तौल नहीं होता कि जितनी रूई है, उसको जलानेके लिये अग्नि भी उतनी ही हो। इसी तरह पाप कितने हैं और भगवान्‌का नाम कितना है—यह गिनती नहीं होती। मकानमें ठसाठस अँधेरा भरा हो तो एक दीपककी लौ करते ही सब भाग जाता है। संसार क्षणभंगुर है, नश्वर है, जा रहा है, नष्ट हो रहा है। परंतु भगवान्, भगवान्‌का नाम, भगवान्‌की महिमा, भगवान्‌का प्रभाव नित्य-निरन्तर रहनेवाला है। उस रहनेवालेके सामने यह बहनेवाला कुछ ताकत नहीं रखता।

शरीर, इन्द्रियाँ आदि नाशवान् हैं, परिवर्तनशील हैं और

स्वयं (जीवात्मा) अविनाशी है, अपरिवर्तनशील है। इन दोनोंका ठीक तरहसे ज्ञान हो जाय अथवा नाशवान्‌का आश्रय छोड़कर परमात्माके चरणोंका आश्रय ले ले। नाशवान्‌का आश्रय लेना, उसको अपना आधार मानना बहुत बड़ी गलती है। रुपयोंसे मेरा काम हो जायगा, कुटुम्बियोंसे काम हो जायगा, शरीरसे ऐसे हो जायगा; मेरेमें बड़ी भारी योग्यता है, मेरेमें बड़ी विद्या है, मेरेको बड़ा पद मिला हुआ है, मैं बड़ा अधिकारी हूँ—ये सब बदलनेवाले और मिटनेवाले हैं। अगर इन सबका सहारा छोड़कर केवल भगवान्‌का सहारा ले लिया जाय तो निहाल हो जायँ!

सबसे पहले इस बातको जाननेकी आवश्यकता है कि विनाशी और अविनाशी—ये दो चीजें हैं। इसको जानना मनुष्यका खास काम है। भगवान्‌ने गीताके आरम्भमें ही यह विषय चलाया। दूसरे अध्यायके ग्यारहवें श्लोकसे लेकर तीसवें श्लोकतक भगवान्‌ने सत्–असत्, नित्य–अनित्य; देह–देही, शरीर–शरीरी— इन दोनोंके भेदको बताया। इन दोनोंका भेद ठीक समझमें आ जाय तो कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग आदि सब–के–सब साधन सुगम हो जाते हैं। इनका भेद समझे बिना साधन कठिन हो जाता है। इनका भेद ठीक समझमें आ जाय तो हम परिवर्तनशीलसे ऊँचे उठ जायँगे, इसमें सन्देहकी बात नहीं है। कारण कि वास्तवमें हम परिवर्तनशीलसे ऊँचे हैं। हम जैसे हैं, वैसा अनुभव करनेमें क्या कठिनता है? नित्य और अनित्य, सत् और असत् अविनाशी और विनाशी—इनके भेदको ठीक तरहसे समझनेपर तत्त्वबोध हो जाता है और जन्म–मरणके चक्करसे छुटकारा हो जाता है। प्रकृतिके गुणोंका संग, आसक्ति, प्रियता,

खिंचाव ही जन्म-मरणका खास कारण है—‘**कारणं गुणसंगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु**’ (गीता १३। २१)।

बहुत-से भाई कहते हैं कि क्या करें, मन नहीं लगता और मन लगे बिना कुछ नहीं होता। भजनमें मन नहीं लगा तो भजन करनेसे क्या फायदा? राम-राम करते हो, पर मन लगे बिना कुछ नहीं—ऐसा निर्णय दूसरे लोग भी दे देते हैं। झट दूसरोंको निर्णय दे देना, सम्मति दे देना बुद्धिकी अजीर्णता है। उनसे पूछो कि आपने ऐसा करके देखा है क्या? इलाज करनेके लिये अच्छे-अच्छे वैद्य हैं, पर आजकल हरेक आदमी इलाज करना चाहता है। इसको अमुक चीज दे दो, ठीक हो जायगा; अमुक चीज मत दो, उससे ठीक नहीं होगा—ऐसी सम्मति चलते-चलते दे देते हैं। उनसे पूछो कि तुमने आयुर्वेद पढ़ा है? ना। वैद्यकी करते हो? ना। यह बुद्धिका अजीर्ण है।

गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजका जन्म बीत गया राम-रामके ऊपर। पहले उनका नाम ‘रामबोला’ था; क्योंकि जन्म लेते समय वे ‘राम’ बोले। ‘तुलसीदास’ नाम तो पीछे हुआ। वे कहते हैं—

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ।
नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥

(मानस, बाल० २८। १)

भगवान्‌का नाम लेते ही दसों दिशाओंमें मंगल-ही-मंगल होता है। दुर्भावसे भी नाम लिया जाय तो वह भी कल्याण करता है। परन्तु लोग कहते हैं कि मन नहीं लगा तो कुछ नहीं! भाई-बहन ध्यान देकर मेरी बातपर विचार करें। पहले

मन लग जाय, फिर नाम लेंगे—ऐसा कभी होनेवाला नहीं है। भगवान्‌का नाम लेते-लेते ही मन लगेगा। कम-से-कम आप नाम लेना शुरू तो कर दो। लोग खुद तो कुछ करते नहीं और 'मन नहीं लगा तो कोई फायदा नहीं'—ऐसा कहकर दूसरोंका भी साधन छुड़ा देते हैं! आप भी नरकोंमें जाते हैं और दूसरोंको भी ले जाते हैं। सज्जनो! खास खतरनाक चीज क्या है? नाशवान् वस्तुओंमें हमारा जो मोह है, प्रियता है, खिंचाव है, यह है खतरेकी चीज। नाशवान्‌की प्रियता ही आपको रुलायेगी—'**प्रियस्त्वां रोदयति।**'

संसारका राग, खिंचाव अज्ञानका चिह्न है, मूर्खताकी खास पहचान है—'**रागो लिंगमबोधस्य चित्तव्यायामभूमिषु।**' जितने दर्जेका नाशवान्‌में खिंचाव है, उतने ही दर्जेका मूर्ख है। वृक्षके कोटरमें आग लगा दे और फिर ऊपरकी तरफ देखकर प्रतीक्षा करे कि वृक्ष कब हरा होगा, उसमें कब फल-फूल लगेंगे, तो यह मूर्खता ही है। इसी तरह संसारमें तो राग है और देखते हैं कि सुख-शान्ति मिलेगी, प्रसन्नता होगी! यह होगा नहीं कभी।

मनुष्य क्या करते हैं? राग तो बढ़ाते जाते हैं और चाहते हैं शान्ति। इतना धन हो जाय तो सुख हो जायगा, इतनी सम्पत्ति हो जाय तो सुख हो जायगा। अरे भाई! धन-सम्पत्तिके होनेसे सुख नहीं होता। आपको वहम हो तो परीक्षा करके देख लें। जिसके पास ज्यादा-से-ज्यादा धन हो, उससे मिलकर पूछ लो कि आपको किसी तरहका दुःख तो नहीं है? किसी तरहकी अशान्ति तो नहीं है? वह पोल निकाल देगा तो आपका समाधान हो जायगा!

एक घरमें चूहे बहुत हो गये। उनको मारना तो ठीक नहीं, पकड़कर दूर जंगलमें छोड़ दें, जहाँ वे सुरक्षित रहें—ऐसा सोचकर चूहोंको पकड़नेके लिये तारोंसे बना पिंजड़ा ले आये। उसमें रोटीके टुकड़े रख दिये और उसको अँधेरेमें रख दिया। अब चूहे आते हैं और चारों तरफ चढ़ते हैं कि किसी तरहसे पिंजड़ेमें पड़ी रोटी मिल जाय तो हम निहाल हो जायँ! ढूँढ़ते-ढूँढ़ते दरवाजा मिल जाता है। उधर जाते ही स्प्रिंग लगी हुई पत्ती (बोझ पड़नेपर) नीचे झुक जाती है और चूहा पिंजड़ेमें चला जाता है। भीतर जाते ही पत्ती वापस ऊपर हो जाती है। इधर बाहर खटका लगता है और उधर चूहेके भीतर खटका लगता है। अब वह रोटी खाना भूलकर इधर-उधर दौड़ता है और बाहर निकलनेका उद्योग करता है कि निकलूँ कैसे? बाहरवाले चूहे समझते हैं कि यह भीतरवाला चूहा बड़ी मौजमें है। अन्दर कितनी रोटी पड़ी है और कितनी मौजमें घूमता है। हम ही बाहर रह गये। उनमेंसे कोई दरवाजा ढूँढ़ लेता है और उसके भीतर चला जाता है तो मुश्किल हो जाती है। दोनों पिंजड़ेके भीतर लड़ते हैं और इधर-उधर दौड़ते हैं। बाहरके चूहे देखते हैं कि ये तो मौज करते हैं, हम बाहर वंचित रह गये। इस तरह चूहे उसमें फँसते जाते हैं। यह पिंजड़ा तो दूसरोंका बनाया हुआ होता है। परन्तु जिस पिंजड़ेमें हम फँसते हैं, वह हमारा ही बनाया हुआ होता है।

जिनके पास धन कम होता है, वे देखते हैं कि झूठ, कपट, बेईमानी, चोरी आदि करके किसी तरहसे

अधिक-से-अधिक धन इकट्ठा कर लें तो हम सुखी हो जायँगे। धन हो जानेसे खूब मौज हो जायगी, आनन्द हो जायगा। जिनका विवाह नहीं हुआ है, वे देखते हैं कि विवाह किये हुए बड़ी मौजमें हैं, हम रीते ही रह गये। किसी तरहसे हमारा विवाह हो जाय! जब उनका विवाह हो जाता है और पूछते हैं—जै रामजीकी! क्या ढंग है? तब वे कहते हैं—फँस गये! बड़े शहरोंमें नौकरी करते हैं। अकेले होते तो कहीं भी रह जाते, पर अब बड़ी मुश्किल हो गयी! बाल-बच्चोंको कहाँ रखें? कैसे रहें? उनकी पढ़ाई आदिका प्रबन्ध करना है। वे बड़े हो जायँ तो उनका विवाह करना है। बड़ी आफत आ जाती है। ऐसे ही लोग कहते हैं कि वे बड़े धनी आदमी हैं, बड़े सुखी हैं, बड़े आराममें हैं। उनके पास रहकर देखो। उनको रातमें चैनसे नींद नहीं आती। समयपर भोजन नहीं कर सकते। दोपहरके दो बज जायँ तो भी रोटी खानेकी फुरसत नहीं मिलती। रातमें ग्यारह-बारह बज जाते हैं। मेरे सामने ऐसे अनेक उदाहरण आये हैं। मैं केवल पुस्तककी बात नहीं कहता। देखी हुई बात भी कहता हूँ। पुस्तकोंकी बातें सच्ची हैं ही; क्योंकि ऋषि-मुनियोंने अनुभव करके लिखा है।

कलकत्ताकी बात है। एक सज्जन दलालीका काम करते थे और सत्संगमें आया करते थे। वे कहते कि ये धनी आदमी सत्संग क्यों नहीं करते? इनके पास बहुत धन है, बैठकर खायें तो भी अन्त नहीं आये, फिर भी सत्संग क्यों नहीं करते? ऐसा वे कहा करते। अब उनके पास भी धन ज्यादा हो गया तो उनका भी सत्संगमें आना बन्द हो गया।

अब सत्संगके लिये समय नहीं मिलता। उनसे बातें हुईं। पहले आपको दीखता था कि धनी आदमी सत्संग क्यों नहीं करते, अब आप क्यों नहीं करते? करें कैसे, धंधा बहुत बढ़ गया है, वक्त नहीं मिलता।

सरोवरमें जैसे-जैसे पानी बढ़ता है, वैसे-वैसे कीचड़ भी बढ़ता है। पहले कम होता है, फिर ज्यादा होने लगता है। जैसे-जैसे धन बढ़ता है, वैसे-वैसे दरिद्रता भी बढ़ती है। परन्तु मनुष्यका उस तरफ ध्यान नहीं होता, विचार नहीं होता। साधारण आदमीको सौ या हजार रुपयोंकी भूख रहती है, पर हजार रुपयेवालेको हजारोंकी भूख रहती है। लखपतिको लाखोंकी और करोड़पतिको करोड़ोंकी भूख रहती है। ज्यों-ज्यों धन बढ़ता है, त्यों-त्यों भूख भी बढ़ती है। साधारण आदमीको लाखोंकी भूख नहीं रहती। परन्तु इस तरफ कोई देखता नहीं। यही देखते हैं कि अपने पास धन अधिक हो जाय तो मौज हो जायगी।

भाइयो! ध्यान दो। अधिक पैसोंकी आवश्यकता नहीं है। जितने पैसे आपके पास हैं, उन्हींका बढ़िया-से-बढ़िया उपयोग करें। उससे बड़ा भारी पुण्य होगा। अधिक पैसोंसे अधिक पुण्य होगा—यह कायदा नहीं है। जितनी आपकी शक्ति है, जितना आप खर्च कर सकते हैं, उतना खर्च करनेसे आपका उद्धार हो जायगा। धनी आदमी बहुत खर्च करेगा, तब कल्याण होगा। साधारण आदमीका साधारण खर्चेसे कल्याण हो जायगा।

युधिष्ठिरजी महाराजने बड़ा ही विलक्षण यज्ञ किया। उन्होंने दुर्योधनको खजानेपर रखा। बैर रखनेवालेके हाथमें

खजाना दिया कि वह ज्यादा लुटायेगा तो यज्ञ बढ़िया हो जायगा। आजकल लोग खजानेपर कंजूस आदमीको रखते हैं, जो ज्यादा खर्च न करे। कंजूसीसे अपयश होता है। दुर्योधन दस गुना देते थे, जिससे सब तरफ बड़ी प्रशंसा हुई। ब्राह्मणलोग प्रशंसा करने लगे कि वाह-वाह! युधिष्ठिरजी महाराजने बड़ा भारी यज्ञ किया! उसी समय वहाँ एक नेवला आया और मनुष्यकी भाषामें बोला कि इसी वनमें रहनेवाले एक ब्राह्मण परिवारका जो यज्ञ मैंने देखा, उसके सामने यह यज्ञ कुछ नहीं है। उन्होंने पूछा कि क्या देखा? नेवला कहने लगा—ब्राह्मण, ब्राह्मणी, बेटा और उसकी बहू—ये चार प्राणी इस वनमें रहते थे। वे बड़े शुद्ध ब्राह्मण थे। ब्राह्मण तपोधन होते हैं। त्याग ही उनका धन होता है। वे शिलोञ्छवृत्तिसे अपना जीवन-निर्वाह करते थे। खेतोंमें अनाज काटनेके बाद जमीनपर जो अन्न (ऊमी, सिट्टा आदि) गिरा पड़ा हो, वह भूदेवों (ब्राह्मणों)-के हकका होता है। उनको चुनकर अपना निर्वाह करना 'शिलोञ्छवृत्ति' है। एक बार ब्राह्मणोंको कई दिनोंसे अन्न नहीं मिला। एक दिन जौके खेतमें कुछ जौ मिले। ब्राह्मणने लाकर घरमें दे दिये। सास-बहूने उनका आटा बनाया और भूनकर सतुआ तैयार किया। राजस्थानमें घी चीनी डालकर जो सत्तू बनाया जाता है, वह नहीं। केवल आटा भुना हुआ सतुआ तैयार किया। चारों प्राणी कई दिनके भूखे थे। उन्होंने उस सतुआके पाँच विभाग किये।

जब रसोई बनती है तब उसको पूरी-की-पूरी स्वयं खा लेना पाप है। जो केवल अपने लिये भोजन पकाकर खाते

हैं, वे पापी पापका भक्षण करते हैं—'**भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्**' (गीता ३। १३)। मनुजीने भी कहा है—'**केवलाघी भवति केवलादी**' जो अपने लिये भोजन बनाता है, वह पापका भक्षण करता है। रसोई बनी तो अतिथि-सत्कार करना गृहस्थका धर्म है। भगवान्‌ने ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी, संन्यासी सबका पालन-पोषण करनेकी जिम्मेवारी गृहस्थपर रखी है। इसलिये कोई घरपर आ जाय तो कुछ दे दो। पेटभर खिलाना ही है—ऐसा कोई नियम नहीं है; परन्तु कुछ दो। लौकिक कहावत है—हाथका उत्तर दो, जबानका उत्तर मत दो।

ब्राह्मणने बलिवैश्वदेव कर दिया, भगवान्‌को भोग लगा दिया, फिर पाँच पत्तलोंमें परोस करके बाहर जाकर अतिथिको देखने लगे। रसोई बनकर तैयार हो जाय तो बलिवैश्वदेव करके जितनी देरमें एक गाय दुहे, उतनी देर अतिथिकी प्रतीक्षा करनी चाहिये। अतिथि न आये तो उसका हिस्सा निकालकर भोजन कर सकते हैं। अगर भोजनसे पहले अतिथि आ जाय तो अतिथिको भोजन देकर फिर स्वयं भोजन करना चाहिये। इतनेमें ही एक ब्राह्मण आ गये। उनको भिक्षाके लिये कहा तो वे आ गये। उनको भीतर ले गये और अतिथिके लिये रखा हुआ सतुआ दे दिया। उसको वे पा गये। घरके ब्राह्मण देवताने उनको अपने हिस्सेका सतुआ दे दिया। अतिथि ब्राह्मण वह भी पा गये। ब्राह्मणीने जाकर अपने पतिदेवसे कहा कि प्राणनाथ! अभीतक अतिथिकी तृप्ति नहीं हुई है, उसको मेरा भी हिस्सा दे दो। ब्राह्मणने उसको समझाया कि देखो, तुम स्त्री-जाति हो, भूख अधिक लगती है। तुम भूख सहन नहीं

कर सकोगी। जब हमने अतिथिका सत्कार कर दिया तो गृहस्थके धर्मका पालन हो गया। तुम कोई चिन्ता मत करो। ब्राह्मणीने कहा कि आप भूखे रहें और मैं खाऊँ—ऐसा कभी हो नहीं सकता। ब्राह्मणीने ज्यादा हठ किया तो उसका हिस्सा भी अतिथिको दे दिया। वे उसे भी पा गये। अब बेटा पहुँचा पिताजीके पास। दान-पुण्य करना, श्राद्ध आदि करना परिवारके बड़े (मुख्य) व्यक्तिका काम होता है। इसलिये लड़केने अतिथिको अपना हिस्सा खुद न परोसकर पिताजीसे प्रार्थना की। पिताजी (ब्राह्मण)-ने कहा कि देखो बेटा! तेरी अवस्था छोटी है। छोटी अवस्थामें अग्नि तेज होती है, भूख ज्यादा लगती है। इसलिये तुम खाओ। हम तो बूढ़े हैं, हमारी कोई बात नहीं। बेटा माना नहीं। उसने बहुत हठ किया तो उसका हिस्सा भी अतिथिको परोस दिया। अब बेटेकी बहू पहुँची अपनी सासके पास और बोली कि माताजी! मेरा भाग भी अतिथिको दे दीजिये, जिससे वे तृप्त हो जायँ। हम कई दिनोंसे भूखे हैं, एक दिन और भूखे रह जायँ तो क्या है! बहुत हठ करनेपर उसका हिस्सा भी अतिथिको दे दिया गया। अतिथिको देकर चारों प्राणी बहुत प्रसन्न हुए कि आज तो बड़े आनन्दकी बात हो गयी!

यदि कोई दान देकर पछताता है, दुःखी हो जाता है, तो वह दान उतना फलीभूत नहीं होता। देकर प्रसन्न हो जाय कि आज हम निहाल हो गये! अपना पेट भरा रहनेपर अन्न देना सुगम है। लाखों, करोड़ों रुपये रहनेपर थोड़े रुपये देना सुगम है। परन्तु भूखे पेट अन्न देना मामूली बात नहीं, बड़ा मुश्किल काम है। आपने सुन लिया, हमने कह दिया, जोर

क्या आया? पता तब लगे जब ऐसा काम पड़े। वे चारों प्राणी देकर बहुत प्रसन्न हुए कि आज तो हम निहाल हो गये! वे अतिथि ब्राह्मण धर्मराज रूपसे प्रकट हो गये और बोले कि तुम कितने धर्मात्मा हो—इसकी मैंने परीक्षा ली थी। आज मैं हार गया, तुम जीत गये! तुमने धर्मपर विजय कर ली। अब तुम इसी शरीरसे स्वर्गमें चलो। वे सब धर्मराजके साथ चले गये। वह नेवला कहता है कि मैंने यह सब देखा! पत्तलके ऊपर आचमनका पानी बिखरा था। वहाँ जाकर जब मैंने लोट लगायी तो शरीरके जितने भागमें वह पानी लगा, उतना भाग सोनेका हो गया। बाकीका भाग भीगा नहीं, इसलिये पूरा शरीर सोनेका नहीं हुआ। मैंने इस यज्ञकी महिमा सुनी कि युधिष्ठिरजी महाराजने बड़ा भारी यज्ञ किया है। यहाँ आकर मैं कीचड़में लोटा तो कीचड़ और लग गया, रोयाँ एक भी सोनेका नहीं हुआ! आप इस यज्ञकी झूठी प्रशंसा क्यों करते हो?

अब आप विचार करें, इतना दान-पुण्य करनेपर भी युधिष्ठिरजीका यज्ञ उतना बड़ा नहीं हुआ, जितना उस ब्राह्मणके द्वारा हुआ। अधिक दान देनेसे अधिक पुण्य हो जायगा—यह बात है ही नहीं। बहनोंके मनमें बहुत रहती है कि हमारे पास धन होगा तो ऐसा दान करूँगी, ऐसा उद्यापन करूँगी, वैशाख नहाऊँगी, ऐसा करूँगी, वैसा करूँगी। न जाने कितने-कितने मनोराज्य होते हैं! बहनो! आपके पास जितना है, उसके अनुसार करो। मालपर जगात (टैक्स) लगती है। आपके पास माल नहीं तो जगात किस बातकी? आपके पास जितना है, उतना ही आपपर लागू होता है।

सत्त सारु दत्त बाँटिये, 'नापो' कहत नरां।
निपट नकारो न दीजिये, उणद देख घरां॥

('नापो कवि कहते हैं कि मनुष्यो! अपनी शक्तिके अनुसार दान दो। घरमें अभाव देखकर किसीको साफ 'ना' मत कहो, प्रत्युत कुछ-न-कुछ दे दो।')

शक्तिके अनुसार दो तो वह बड़ा भारी दान हो जायगा। महिमा वस्तुके सदुपयोगकी है। यह नहीं कि ज्यादा धन होगा तो हम दान-पुण्य करेंगे; तीर्थ, व्रत, यज्ञ आदि करेंगे, बड़े-बड़े सत्संग-समारोह करेंगे; परन्तु क्या करें, हमारे पास पैसा नहीं है! सज्जनो! पैसा नहीं है तो आपपर दान, तीर्थ, व्रत, यज्ञ आदि करना लागू ही नहीं होता। आप भी छोटे बालकसे उतनी ही आशा रखते हैं, जितना वह कर सकता है। क्या भगवान् आप जितने भी जानकार और दयालु नहीं हैं? क्या भगवान् आपकी शक्तिको नहीं जानते? आपको उतना ही करना है, जितनी आपकी शक्ति है। आपके पास जो योग्यता, परिस्थिति आदि है, उसका सदुपयोग करो तो कल्याण कम नहीं होगा। युधिष्ठिरजीसे उस ब्राह्मणका यज्ञ कम नहीं था। पासमें खानेको भी नहीं था; परन्तु यज्ञ हो गया युधिष्ठिरजीके यज्ञसे बढ़कर!

ऐसी इच्छा न करें कि अधिक हो जाय तो अधिक करेंगे। जो पासमें है, उसीका अच्छे-से-अच्छा उपयोग करो। प्राप्त परिस्थितिका बढ़िया-से-बढ़िया सदुपयोग करें तो वह काम छोटा नहीं होगा, बड़े महत्त्वका हो जायगा। मैंने एक कथा सुनी है। वह किसी दाक्षिणात्य रामायणमें आती है, ऐसा सुना है। रामजी और रावणका आपसमें घमासान युद्ध

हो रहा था। इतनेमें एक गिलहरी दोनों हाथोंमें तिनका लेकर रामजीके पास पहुँची और बोली कि मैं अभी रावणको मार दूँ! भगवान् उसपर प्रसन्न हो गये। उसपर हाथ रखा, जिससे (अँगुलियोंके स्पर्शसे) वे लकीरें हो गयीं। गिलहरीमें रावणको मारनेकी क्या ताकत है? पर उसने अपना पूरा बल लगा दिया, जिससे भगवान् खुश हो गये।

आप दूसरेके उद्धारके लिये अपनी पूरी शक्ति लगा दें। भगवान् देखते हैं कि मामूली शक्ति होते हुए भी वह दूसरोंके उद्धारके लिये चेष्टा करता है तो मैं कम-से-कम इसका उद्धार तो कर ही दूँ! साधारण शक्तिवाला भी जब अपनी पूरी शक्ति लगाकर दूसरोंके हितकी चेष्टा करता है, तो अच्छे-अच्छे सन्त-महात्माओंपर और भगवान्‌पर भी उसका असर पड़ता है। एक बच्चा कुछ बोझा उठाता है तो कहते हैं कि वाह-वाह, कितना बोझा उठा लिया! जबकि उसी बोझेको आप एक हाथसे उठाकर रख सकते हैं। बच्चेने अपनी पूरी शक्ति लगाकर बोझा उठाया, इसीलिये आप उसकी वाह-वाह करते हैं। ऐसे ही सज्जनो! आपको जो वस्तु, परिस्थिति आदि मिली है, उसीका सदुपयोग करो। आप चाहते हैं कि धन मिल जाय, अच्छी परिस्थिति मिल जाय, हमारा शरीर नीरोग हो जाय तो हम अपना कल्याण कर लेंगे, पर क्या करें, हमारे पास विद्या, बुद्धि, योग्यता नहीं! वास्तवमें आपसे अधिक विद्या, बुद्धि, योग्यताकी कोई आशा रखता ही नहीं। भगवान् भी आशा नहीं रखते। आपके पास जितना है, उसीका अच्छी तरहसे उपयोग कीजिये; भगवान् कल्याण कर देंगे। सज्जनो! परिस्थिति कल्याण करनेवाली नहीं होती। कल्याण करनेवाली है—

परिस्थितिका सदुपयोग करनेकी युक्ति। वह आप ठीक तरहसे विचारपूर्वक समझ लें और परिस्थितिका सदुपयोग करें तो उससे कल्याण हो जायगा।

बचपनमें पढ़ी हुई एक कहानी याद आ गयी। 'बीरबल-विनोद' पुस्तकमें बादशाह अकबर और बीरबलका संवाद है। एक बार बादशाहने पूछा कि शस्त्र कौन-सा बड़ा है, जिससे विजय हो जाय? बीरबलने सीधा राजस्थानी भाषामें उत्तर दिया—'ओसाण (अवसर) बादशाहने विचार किया कि इसकी परीक्षा करेंगे। एक दिन बीरबल बादशाहके साथ जंगलमें गया। वह बड़ा बुद्धिमान् ब्राह्मण था। बादशाहकी उसपर बड़ी कृपा थी। वह अपनी रसोई अलग बनाकर खाता था। वहाँ जंगलमें वह एकान्तमें अपनी रोटी बना रहा था। बादशाहने एक हाथीको मदिरा पिलाकर बीरबलकी तरफ छोड़ दिया कि देखें, अब यह कैसे अपनी रक्षा करता है? बीरबलने देख लिया कि हाथी आ रहा है। वहाँ एक कुतिया बैठी थी। बीरबलने कुतियाको रोटीका टुकड़ा दिया। ज्यों ही हाथी नजदीक आया, कुतियाके पैर पकड़कर हाथीपर फेंका। कुतिया जाकर हाथीके माथेपर लगी। हाथी भाग गया पीछे कि न जाने यह क्या आफत आ गयी! अब हाथी भगानेका यह भी शस्त्र कभी किसीने सुना है? यह तो मौका, अवसर है कि हाथीको भगा दिया। बादशाहने कहा कि ठीक है जो ओसाण (अवसर) आ जाय, वही शस्त्र है। इसी तरह जो अवसर आ जाय वही दान है, पुण्य है।

लोगोंमें कहावत है—*'छल-बलकी खेती भली, बेला-पुलको दान।'* वर्षा बरसते ही चट खेती कर लो तो वह

हो जायगी। दो दिनके बाद वह नहीं होगा, जो आरम्भमें हो जायगा। इसी प्रकार जब सुपात्र मिल जाय, तभी दान दे दो तो उसका बड़ा भारी पुण्य होता है। द्रौपदीकी एक बात हमने सुनी है। द्रौपदी पहले जन्ममें भी एक स्त्री थी। एक दिन वह नदीमें जल भरने गयी। सरदीका समय था। एक ब्राह्मण देवता लँगोटी लगाकर नदीमें स्नान कर रहा था। संयोगवश उसकी लँगोटी पानीमें बह गयी। बाहर माताएँ खड़ी थीं। वह बेचारा ठण्डसे काँपने लगा। परन्तु बाहर कैसे आये? कपड़ा था नहीं पासमें। उस स्त्रीने देखा कि इस बेचारेके पास कपड़ा नहीं है और सरदीमें ठिठुर रहा है। उसने अपनी साड़ीकी लीरी फाड़कर उसकी तरफ फेंकी, पर वह बह गयी। एक-दो लीरी और भी फेंकी, पर वे भी बह गयीं। फिर एक लीरी पत्थर बाँधकर फेंकी तो वह उसके हाथमें आ गयी और उसकी लँगोटी लगाकर वह बाहर निकल आया। उस स्त्रीके मनमें यह भाव नहीं आया कि अपनी साड़ी कैसे फाड़ दूँ? उस एक चीरकी लीरसे कितना बढ़ गया चीर! जब द्रौपदीका चीर खींचा गया, उस समय भगवान्‌ने कहा—

आरतवान अतीत को, दीवी चीर कि लीर।
मैं न बढ़ायौ द्रौपदी, तू हि बढ़ायौ चीर॥

बेचारा दुःखी ब्राह्मण जलमें काँप रहा था। लज्जा-निवारणके लिये तूने अपना चीर फाड़कर दे दिया। उसी कारण यह तुम्हारा चीर बढ़ गया। ***'दुस्सासन की भुजा थकित भई, बसन रूप भये स्याम।'*** इस प्रकार समयपर जो दान दिया जाता है, वस्तुका सदुपयोग किया जाता है, उसका बड़ा भारी माहात्म्य होता है।

आपके पास शक्ति कम है, परिस्थिति भी बड़ी विकट आयी हुई है, फिर भी आप घबरायें नहीं, प्रत्युत सोचें कि इस समय क्या किया जाय। कुछ-न-कुछ उपाय निकल आयेगा। आपके द्वारा बड़ा उपकार हो जायगा, जो आपका कल्याण कर देगा। सज्जनो! वस्तु परिस्थितिकी महिमा नहीं है, उसके उपयोगकी महिमा है। आप अनुकूल परिस्थितिका भी सदुपयोग कर सकते हैं और प्रतिकूल परिस्थितिका भी। स्वस्थताका भी सदुपयोग कर सकते हैं और अस्वस्थताका भी। पासमें बहुत कुछ हो अथवा कुछ न हो—दोनों परिस्थितियोंका आप सदुपयोग कर सकते हैं। इसलिये आप अपनी परिस्थिति देखकर घबरायें नहीं। उस परिस्थितिका सदुपयोग करें तो भगवान् प्रसन्न हो जायँगे।

३. नाम-जप और सेवासे भगवत्प्राप्ति

पारमार्थिक साधनोंमें 'क्रिया' की प्रधानता नहीं है, प्रत्युत 'भाव' और 'ज्ञान' की प्रधानता है। क्रियाकी प्रधानता तो सांसारिक कार्योंमें है। भगवन्नामका जप क्रिया होते हुए भी भावको, ज्ञानको जाग्रत् करनेका विलक्षण साधन है। नाम-जपमें 'भाव' की प्रधानता है। भावकी कमी रहनेसे नाम-जप करते हुए भी विशेष लाभ नहीं होता। भावके विषयमें बहुत-सी बातें हैं। पहली बात यह है कि भगवान्‌के साथ अपनापन हो। अपनापन रखकर नाम-जप किया जाय तो उसका भगवान्‌पर असर पड़ता है। एक बालक माँ-माँ पुकारता है। यहाँ बैठी जिन बहनोंके बालक हैं, उन सभीका नाम माँ है, पर उस बालककी पुकार सुनकर वे सब नहीं दौड़तीं। जिसको वह माँ कहता है, वही उठकर दौड़ती है और उसको प्यारसे दुलारकर हृदयसे लगाती है। तात्पर्य है कि माँका होकर माँको पुकारा जाय तो उसका माँपर असर पड़ता है। खेलते समय भी बालक माँ-माँ कहता है। माँ देख लेती है कि वह खेलमें लगा हुआ है; अतः माँ-माँ कहनेपर भी माँपर इतना असर नहीं पड़ता।

नाम-जपकी खास विधि है—भगवान्‌का होकर भगवान्‌का नाम लें। केवल भगवान् ही हमारे हैं और हम भगवान्‌के ही हैं; संसार हमारा नहीं है और हम संसारके नहीं हैं—यह अगर पक्का विचार हो जाय तो तत्काल लाभ होता है। गोस्वामीजी महाराजने कहा है—

बिगरी जनम अनेक की सुधरै अबहीं आजु।
होहि राम को नाम जपु तुलसी तजि कुसमाजु॥

(दोहावली २२)

अनेक जन्मोंकी बिगड़ी हुई बात आज सुधर जाय और आज भी अभी-अभी, इसी क्षण सुधर जाय। कैसे सुधर जाय? तो कहते हैं कि तू रामजीका होकर रामजीको पुकार। परन्तु हमारेसे भूल यह होती है कि हम संसारके होकर भगवान्‌को पुकारते हैं। संसारके काम-धन्धोंके कारण वक्त नहीं मिलता, हम तो संसारी आदमी हैं, कलियुगी जीव हैं—इस प्रकार अपने-आपको संसारी और कलियुगी मानोगे तो आपपर संसारका और कलियुगका प्रभाव ज्यादा पड़ेगा; क्योंकि उनके साथ आपने सम्बन्ध जोड़ लिया। बिजलीके तारसे सम्बन्ध जुड़ जाता है तो करेण्ट आ जाता है, ऐसे ही संसार और कलियुगसे सम्बन्ध जोड़ेंगे तो उनका असर जरूर आयेगा। कहते हैं, महाराज! हम तो खाली राम-राम करते हैं, तो ठोस भरा हुआ क्यों नहीं करते भाई? मानो भगवान्‌के नाममें तो खालीपना है और सम्बन्ध हमारा संसार और कलियुगसे है! यह बहुत बड़ी गलती है।

वास्तवमें भगवान् ही हमारे हैं। जब हमने संसारमें जन्म नहीं लिया था, तब भी वे हमारे थे और जब मर जायँगे, तब भी वे हमारे रहेंगे। यह संसार पहले भी हमारा नहीं था, आगे भी हमारा नहीं रहेगा और अभी भी प्रतिक्षण हमारेसे अलग हो रहा है। उम्र भी बीतती चली जा रही है, शरीर भी बीतता चला जा रहा है और कलियुगका समय भी बीतता चला जा रहा है। संसारका सम्बन्ध आपके साथ है ही नहीं। इस बातको आप खयालमें रखें।

मैंने बहुत बार कहा है, अब भी कहता हूँ। जब आप बालक थे, तब अपनेको बालक कहते थे। परन्तु अब आप अपनेको बालक नहीं कहते। आपने कौन-सी तारीखको बालकपन छोड़ा? कोई भाई-बहन बता सकता है तो बताये! वास्तवमें आपने बालकपन छोड़ा नहीं, प्रत्युत वह अपने-आप छूट गया। जब बालकपन छूट गया तो क्या जवानी नहीं छूटेगी? वृद्धावस्था नहीं छूटेगी? छूटनेकी रीति है। जो निरन्तर छूटता चला जा रहा है, उसके साथ सम्बन्ध केवल आपका माना हुआ है, वास्तवमें सम्बन्ध है नहीं। परन्तु भगवान्‌के साथ आपका सम्बन्ध पहले भी था, अभी भी है और आगे भी रहेगा। यह सम्बन्ध टूटेगा नहीं कभी। दुष्कर्मोंके कारण चाहे चौरासी लाख योनियोंमें जाना पड़े, नरकोंमें जाना पड़े, तो भी आप भगवान्से अलग नहीं हो सकते और भगवान् आपसे अलग नहीं हो सकते। भगवान्‌के साथ अपने इस नित्य-सम्बन्धको तो आपने भुला दिया और संसारके साथ सम्बन्ध मानकर भगवन्नामका जप करते हैं, इसी कारण भगवन्नामका प्रभाव देखनेमें नहीं आ रहा है।

कुटुम्बका सम्बन्ध तो 'नदी-नाव-संयोग' की तरह है। नदीके इस पार सब एक साथ नौकापर बैठ जाते हैं और उस पार पहुँचते ही उतर जाते हैं। जबतक नदीसे पार नहीं होते, तभीतक हमारा सम्बन्ध रहता है। ऐसे ही कुटुम्बका सम्बन्ध है, जो आगे रहेगा नहीं, छूट जायगा। यह सच्ची बात है। अगर आप इस बातको मान लें कि 'मैं शरीर-संसारका नहीं हूँ और शरीर-संसार मेरे नहीं हैं, मैं परमात्माका हूँ और परमात्मा मेरे हैं, मैं अपने परमात्माका

नाम लेता हूँ' तो भगवान्‌की ताकत नहीं कि वे आपकी तरफ कृपादृष्टिसे न देखें!

भगवान्‌के होकर भगवान्‌के नामका जप करो—*'होहि राम को नाम जपु।'* बच्चा माँके साथ जितना अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है, माँ उतनी ही जल्दी उसके पास आती है। बालक जोरसे रो पड़ता है तो माँ अपनी बड़ी लड़कीको भेजती है कि बेटी! जा, भाईको समझा, राजी कर। वह आकर भाईके हाथमें झुनझुनियाँ देती है, पर वह उसे फेंक देता है। वह लड्डू देती है तो उसे भी फेंक देता है। बहन उसको गोदीमें लेती है तो वह लात मारता है और माँ-माँ करता है। तब माँको उसके पास आना ही पड़ता है। अगर वह झुनझुनियाँसे राजी हो जाय अथवा बहनकी गोदमें चला जाय तो फिर माँ उसके पास नहीं आती। बहनकी गोदमें माँका दूध थोड़े ही है वह प्यार थोड़े ही है! इस तरह नाम-जप करनेवालेका लोगोंमें आदर होता है कि वाह सा! ये तो भगतजी हैं, भजन करनेवाले हैं! बस, अब झुनझुना बजाओ बैठे! लोग आदर-सम्मान करने लगते हैं, दण्डवत् प्रणाम करते हैं, पूजन करते हैं, प्रशंसा करते हैं कि ये बड़े भारी महात्मा हैं। यह मायारूपी बहन आती है और गोदमें ले लेती है। उसमें राजी हो जाते हो तो फिर भगवान् नहीं आते। नामकी बिक्री करके उसके बदले आदर लेते हो, भेंट-नमस्कार लेते हो, सुख लेते हो तो बताओ। नामका संग्रह कैसे हो? सुख लेकर नामको खर्च कर रहे हो।

सन्तोंने कहा है—*'हरिया बन्दीवान ज्यूँ करिये कूक पुकार।'* कोई चारों तरफसे घिरा हुआ हो और वहाँसे निकलना चाहता हो तो वह जैसे पुकारता है—कोई छुड़ाओ!

छुड़ाओ! ऐसे ही भीतरसे पुकार निकले—हे नाथ! मैं काम, क्रोध, लोभ, ममता, आसक्तिमें फँस गया हूँ, हे नाथ! मुझे इनसे छुड़ाओ! इस तरह आर्त होकर भगवान्‌को पुकारो।

आजतक नामकी जितनी महिमा लिखी गयी है, उतनी तो है ही, उसके अलावा भी बहुत अधिक बाकी बची है। परन्तु नाम सही ढंगसे न लेकर कहते हैं कि नामकी जितनी महिमा शास्त्रोंमें लिखी है, सुननेमें आती है, उतनी देखनेमें तो नहीं आती! देखनेमें आये कैसे? आपने उस ढंगसे नाम लिया ही नहीं। नाम लेनेका ढंग है—अनन्यभावसे नाम लेना कि केवल भगवान् ही मेरे हैं, भगवान्‌के सिवाय और कोई मेरा नहीं है। मैं केवल भगवान्‌का हूँ, भगवान्‌के सिवाय और किसीका मैं नहीं हूँ। माता-पिता, स्त्री-पुत्र आदिका मैं नहीं हूँ। वे मेरेको अपना मानते हैं तो मैं उनकी सेवा करनेके लिये हूँ। माता-पिताकी सेवा करो, स्त्री-पुत्रका पालन-पोषण करो, पर उनसे कुछ भी लेनेका भाव मत रखो। खूब तत्परतासे, न्यायसे उनकी प्रसन्नता लो, पर अपने-आपको फँसने मत दो। देनेसे आप फँसोगे नहीं, पर लेनेकी इच्छामात्रसे बँध जाओगे। सेवा करनेके लिये तो सब संसार हमारा है, पर लेनेके लिये संसार हमारा है ही नहीं। बढ़िया बात तो यह है कि भगवान्‌से भी कुछ लेनेके लिये हमें नाम नहीं लेना है। पापोंका नाश करनेके लिये भी नाम नहीं लेना है। नाम इसलिये लेना है कि भगवान् हमें स्वीकार कर लें, हम केवल भगवान्‌के रहें, भगवान्‌को कभी भूलें नहीं। किसी भक्तने कहा है—

दिवि वा भुवि वा ममास्तु वासो
नरके वा नरकान्तक प्रकामम्।
अवधीरितशारदारविन्दौ चरणौ
ते मरणेऽपि चिन्तयामि॥

'हे नरकासुरका अन्त करनेवाले प्रभो! आप चाहे मेरा स्वर्गमें निवास कर दें, चाहे पृथ्वीपर निवास कर दें और चाहे नरकोंमें निवास कर दें। इसके लिये मैं मना नहीं करता। मेरी तो एक ही माँग है कि शरद-ऋतुके कमलकी शोभाको हरनेवाले आपके जो चरण हैं, उनको मृत्यु-अवस्थामें भी भूलूँ नहीं। आपके चरण मेरेको सदा याद रहें।'

मज्जन्मनः फलमिदं मधुकैटभारे
मत्प्रार्थनीयमदनुग्रह एष एव।
त्वद्भृत्यभृत्यपरिचारकभृत्यभृत्य-
भृत्यस्य भृत्य इति मां स्मर लोकनाथ॥

(गर्गसंहिता, अश्वमेध ५०। ३३)

'मेरे जन्मका फल यही है, मेरी प्रार्थनाका भी एक ही विषय है और आपकी कृपा भी मैं इसीमें मानता हूँ कि आप अपने दासोंके दास, उन दासोंके नौकरोंका नौकर और उन नौकरोंके गुलामोंका गुलाम तथा उनका भी गुलाम—इस तरह अपने दासोंकी परम्परामें सातवीं जगह भी मेरेको याद कर लें।'

एक बड़ी मार्मिक बात है, कृपया ध्यान दें। भगवान्‌से हमें कुछ नहीं लेना है। भगवान्‌ने तो कृपा करके मानव-शरीर दे दिया, अब और क्या चाहते हो उनसे?

कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥

(मानस, उत्तर० ४४। ६)

प्रभुने कम कृपा नहीं की है। देवताओंके लिये भी दुर्लभ शरीर दे दिया। इसके साथ ही यत्किंचित् पारमार्थिक रुचि हो गयी, यह कोई मामूली चीज नहीं है। हजारों-लाखों आदमियोंके भीतर भी भगवान्‌की तरफ रुचि नहीं है, पर वह रुचि हमारेमें हो गयी—यह विलक्षण बात है। भगवान्‌के दरबारमें सबसे दुर्लभ और बढ़िया-से-बढ़िया चीज है—भगवान्‌के प्यारे भक्त! भगवान् कहते हैं—

साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम्।
मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि॥

(श्रीमद्भागवत ९। ४। ६८)

'सन्त मेरे हृदय हैं और मैं उन सन्तोंका हृदय हूँ। वे मेरे सिवाय और कुछ नहीं जानते तथा मैं भी उनके सिवाय और कुछ नहीं जानता।'

ऐसे भगवान्‌के प्यारे सन्तोंकी वाणी, उनका संग, उनका इतिहास हमारेको मिल जाय तो यह भगवान्‌की कम कृपा है क्या? हनुमान्‌जी लंकामें विभीषणजीसे मिलते हैं तो वहाँ विभीषणजी कहते हैं—

अब मोहि भा भरोस हनुमंता।
बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं संता॥

(मानस, सुन्दर० ७। ४)

हनुमान्‌जी! अब मुझे भरोसा हो गया कि भगवान् मेरेपर कृपा करेंगे। आप मिल गये, इससे यह मालूम देता है कि भगवान् भी मिलेंगे! भगवान्‌ने अपने दरबारकी बढ़िया-से-बढ़िया चीज दे दी है, फिर भी भगवान्‌से माँगते हैं कि वह

दो, अमुक चीज दो! आप समझते ही नहीं कि भगवान्‌से क्या माँगा जाय। भगवान्‌की दी हुई वस्तुका मूल्य भी नहीं आँक सकते।

एक मार्मिक बात बताता हूँ। सज्जनो! आपसे भगवान् भी मिले, भगवान्‌के अभावकी पूर्ति भी आपसे हो—ऐसी विलक्षण योग्यता, अधिकार भगवान्‌ने आपको दिया है! आपने संसारमें जितनी ममता कर ली, उतनी भगवान्‌के साथ आत्मीयता छूट गयी अर्थात् उतना भगवान्‌में अभाव आ गया! किसी माँका बालक दूसरेकी माँकी गोदमें चला जाय और अपनी माँकी गोदमें न आये, माँको याद ही न करे, पसन्द ही न करे, तो क्या माँ खुशी होगी? ऐसे ही हम भगवान्‌को छोड़कर संसारमें लग गये हैं। अगर हम भगवान्‌में लग जायँ, भगवान्‌के सम्मुख हो जायँ तो भगवान् निहाल हो जायँगे। हमारी भगवान्‌में श्रद्धा नहीं है, प्रेम नहीं है, अपनापन है तो उतना भगवान्‌में अभाव आ गया। हम भगवान्‌में श्रद्धा, प्रेम, अपनापन करते हैं तो उस अभावकी पूर्ति हो जाती है। इस प्रकार भगवान्‌के भी अभावकी पूर्ति करनेकी योग्यतावाले मनुष्य-शरीरको पाकर भी हम नाशवान् पदार्थोंके पीछे-पीछे दौड़ते हैं, जो हमारी कदर करते ही नहीं!

आप रुपयोंके पीछे-पीछे दौड़ते हैं, पर रुपयोंने कभी कहा कि हम तुम्हारे हैं, तुम हमारे हो? घर, जमीन, जायदाद, रुपये, कपड़े, गहने आदिको आप मेरा-मेरा कहते हैं, पर क्या उन्होंने कभी कहा कि हम तुम्हारे हैं, तुम हमारे हो? उलटे वे आपको छिटका रहे हैं, आपको छोड़कर जा रहे हैं। कुटुम्बी भी जा रहे हैं। कपड़े, गहने भी जा रहे हैं, फट रहे हैं, नष्ट हो रहे हैं। फिर भी आप 'हाय रुपया,

हाय रुपया' करते हैं, यह कोई मनुष्यपना है? रुपयोंके लिये झूठ, कपट, बेईमानी, पाप, अन्याय करते हुए भी डरते नहीं। रुपयोंका अच्छे काममें उपयोग भी नहीं कर सकते। चाहे भगवान्‌से विमुख हो जायँ, धर्म-कर्म सब डूब जाय, पर किसी तरहसे कहींसे रुपये ले लें। बुरे कर्मसे भी किसी तरहसे कमा लें और खा लें, बस। यह कोई दशा है? आप जरा सोचें। हृदयसे तो रुपयोंको चाहते हैं, पर ऊपरसे भगवान्‌का नाम लेते हैं!

ऊपर मीठी बात, कतरनी काँखमें।
आग बुझी मत जान, दबी है राखमें॥

भीतरमें आग बुझी नहीं है। कपट, जालसाजी, ठगी धोखेबाजी करके किसी तरहसे दूसरेको चूस लें—ऐसी लूट-खसोट मची है मनमें। कहते हैं कि नाम-जपसे लाभ दीखता नहीं! दीखे कैसे? मनमें तो महान् कूड़ा-कचरा भरा हुआ है।

मीराबाई इतनी ऊँची हो गयी, उसका कारण क्या था? ***'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई'*** मेरे तो केवल भगवान् हैं, बस। और कोई मेरा है ही नहीं। इस प्रकार भगवान्‌के साथ अनन्य सम्बन्ध हो। यह अनन्यभाव ही भगवान्‌को पकड़ता है, क्रिया नहीं पकड़ती। पदार्थोंसे और क्रियाओंसे आप भगवान्‌को खरीदना चाहोगे तो यह नहीं होगा। भगवान्‌में अपनापन करो तो भगवान् चूँ नहीं कर सकते, जा नहीं सकते।

मैं भगवान्‌का हूँ और भगवान् मेरे हैं, फिर वे आये क्यों नहीं? अभीतक भगवान् मिले क्यों नहीं? अभीतक भगवान्‌ने दर्शन क्यों नहीं दिये? ऐसी व्याकुलता होनेपर जब संसारसे

सर्वथा सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है, तब भगवत्प्राप्ति हो जाती है। संसारके साथ सम्बन्ध केवल संसारकी सेवा करनेके लिये है। कुटुम्बमें रहते हुए केवल कुटुम्बियोंकी सेवा करनी है, उनसे कोई वस्तु, सेवा लेनेकी आशा मनमें रखनी ही नहीं है।

संसारमें हमारा जन्म ऋणानुबन्धसे हुआ है। मैंने राजस्थानी भाषामें सुना है, कोई दुःख देता है तो कहते हैं *'काला चाबिया है इसका'* अर्थात् इसका तिल खाया है, इसका हमारेपर कोई बदला है, उसको यह लेगा। संसारके जितने सम्बन्धी हैं, सबका बदला आपपर है। वह बदला चुकाना है। अगर मुक्ति चाहते हो तो कम-से-कम पुराना ऋण तो चुकाओ, नया ऋण क्यों लेते हो बाबा? संसारकी सेवा करो, पर संसारसे कुछ चाहो मत। '**आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्।**' (श्रीमद्भागवत ११। ८। ४४) संसारसे आशा रखनेमें महान् दुःख है और संसारसे निराश होनेमें महान् सुख है! माता-पिता, स्त्री-पुत्र, भाई-भौजाई, सब हमारे अनुकूल चलें, हमारा काम करें—इस प्रकार केवल लेने-ही-लेनेके लिये सम्बन्ध मानना आसुरी स्वभाव है।

भगवान् राजी कैसे हों? भगवान्से भी कुछ नहीं लेना है, प्रत्युत देना है। जैसे बच्चा माँसे दूर चला जाय तो माँको उसकी बहुत याद आती है। माताओंकी ऐसी बातें मैंने सुनी हैं। दीपावली, अक्षय तृतीया आदि त्यौहार आते हैं तो माताएँ कहती हैं कि क्या बनायें? लड़का तो घरपर है नहीं, अच्छी चीज बनाकर किसको खिलायें? लड़का घरपर होता है तो माताएँ बढ़िया-बढ़िया चीजें बनाती हैं और लड़केको खिलाकर खुश होती हैं। ऐसे ही भगवान्के लड़के हमलोग

चले गये विदेशमें! अब भगवान् कहते हैं कि क्या करूँ? क्या दूँ? लड़का तो घरपर ही नहीं है! वह तो धन-सम्पत्तिकी तरफ लगा हुआ है, खेल-कूदमें लगा हुआ है!

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं।
जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥

(मानस, सुन्दर० ४४। २)

परन्तु आज सम्मुख हो रहे हैं रुपये-पैसोंके, वस्तुओंके, कुटुम्बके, आरामके, मान-आदरके, स्वाद-शौकीनीके!

जो संसारसे आशा रखता है और भगवान्‌का भजन भी करता है, वह भजन नहीं करनेवालेकी अपेक्षा तो अच्छा ही है। किसी तरहसे भगवान्‌में मन लग जाय तो बड़ा अच्छा है—**'तस्मात् केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत्'** (श्रीमद्भागवत ७। १। ३१)। परन्तु यदि आप नाम-जपका माहात्म्य तत्काल देखना चाहते हैं तो वह तभी देखनेमें आयेगा, जब आप सच्चे हृदयसे भगवान्‌में लग जायँगे। जिन लोगोंने भजन किया है, उन लोगोंमें विलक्षणता आयी है। हमने ऐसे कई देखे हैं कि नाम-जपसे पहले उनकी क्या अवस्था थी और नाम-जपमें लगनेके बाद उनकी क्या अवस्था हो गयी! परन्तु वे लगनसे जपते थे।

जब मैं पढ़ता था, उन दिनोंकी बात है। रात्रिके दस बजेतक पाठ वगैरह होता था। एक दिन रात्रिके दस बजेके बाद मैं बाहर गया। जंगलमें एक सरोवर था, उसके किनारेपर एक साधु बैठे थे, जो हमारे परिचित थे। वे राम-राम कह रहे थे और रो रहे थे। बात क्या है? भगवद्भजनके बिना मेरे बहुत-से दिन खाली चले गये, अब क्या करूँ? वह गया हुआ समय सार्थक कैसे बने? ऐसे

विचारसे उनके आँसू टपक रहे थे। जो समय हाथसे चला गया, वह पीछे नहीं आयेगा। आज साक्षात् भगवान् मिल जायँ तो भी गये हुए समयकी पूर्ति नहीं होगी! अगर समय खाली न जाता तो भगवान् पहले ही मिल जाते, इतने दिन हम भगवान्‌के वियोगमें न रहते!

एक भी स्वास खाली खोय न खलक बीच,
कीचड़ कलंक अंक धोय ले तो धोय ले।
उर अँधियारो पाप पुंज सु भरोयो देख,
ज्ञान की चिरागां चित्त जोय ले तो जोय ले।
मिनखा जनम फिर ऐसो न मिलेगो मूढ़,
परम प्रभू से प्यारो होय ले तो होय ले।
यह छिनभंगु देह तामे जन्म सुधारबो है,
बिजली के झपाके मोती पोय ले तो पोय ले॥

जब बिजलीका प्रकाश होता है, उस समय मोती पिरो ले, नहीं तो फिर अँधेरा हो जायगा। ऐसे ही इस मनुष्य-शरीरके रहते-रहते भजन कर ले, भगवान्‌को प्राप्त कर ले। यह मौका फिर नहीं मिलेगा! ***‘का बरषा सब कृषी सुखानें। समय चुकें पुनि का पछितानें॥’*** (मानस, बाल० २६१।३)। अभी समय है सभी तरफसे मन हटा लो। सब सम्बन्ध टूटनेवाले हैं। कोई भी सम्बन्ध रहनेवाला नहीं है। अगर आप छोड़ दोगे तो निहाल हो जाओगे। छूटनेवालेको ही छोड़ना है, इसमें नयी बात क्या करनी है? छूटनेवालेसे मनसे दूर हो जाओ। दूर होनेका मतलब है—उसकी सेवा करो, पर उससे चाहना मत करो। इससे घरवाले भी नाराज नहीं होंगे; क्योंकि वे सेवा ही चाहते हैं। उनसे सेवा लो मत, तो वे और ज्यादा राजी होंगे।

केवल सेवा-ही-सेवा करें तो दुनिया राजी हो जाय, आप निहाल हो जायँ और भगवान् मिल जायँ। दुनियासे चाहना रखोगे तो वह नाराज हो जायगी। वह आपको देगी भी, तो दुःख पाकर देगी कि क्या करें, आफत आ गयी! परन्तु चाह नहीं रखोगे तो दुनिया गरज करके देगी। जो वास्तवमें भीतरसे चाहरहित हैं, उन सन्तोंकी सेवा करती है दुनिया। सेवा करनेवाले कहते हैं कि महाराजने मेरी चीज स्वीकार कर ली, आज तो हम निहाल हो गये! लेनेवालेके हृदयमें गरज नहीं होगी तो देनेवाला देकर निहाल हो जायगा। परन्तु यदि आपके हृदयमें गरज होगी तो दूसरेको देनेपर भी वह राजी नहीं होगा। वह उलटे सोचेगा कि यह ठग है, देता है तो पता नहीं भीतर क्या कूड़ा-करकट भरा पड़ा है! इसलिये हृदयमें संसारके प्रति उदार भाव रखो।

संसारसे मिली हुई चीज बिलकुल संसारकी है। शरीर माँ-बापसे मिला है, विद्या गुरुजनोंसे मिली है। हमने संसारसे लिया-ही-लिया है। अब तो कृपा करके देना शुरू करो। देना सीखो तो सही! देनेसे घाटा नहीं पड़ेगा। केवल भाव उदारताका बन जाय। जैसे शिकारी देखता है कि मेरी बन्दूकके सामने शिकार आ जाय, ऐसे ही आप देखते हैं कि कोई मेरे सामने आ जाय, मेरे कब्जेमें आ जाय तो किसी तरहसे उससे ले लूँ! दशा तो ऐसी है और कहते हैं कि लाभ नहीं हुआ। लाभ क्या होगा, उलटे पतन होगा! खर्चा जितना आज करते हो, उतना ही करो, ज्यादा खर्चा मत करो, पर भाव बिलकुल बदल दो कि हमें लेना ही नहीं है, देना-ही-देना है। हमें तो सेवा करनी है। सुगमतासे

जितना खर्च कर सको, उतना खर्च करना है, पर 'हमें किसीसे कुछ नहीं लेना है, यह भाव बना लो। फिर देखो, जीवन सुधरता है कि नहीं जीवन निर्मल बन जायगा। लोग राजी हो जायँगे। भगवान् राजी हो जायँगे। आप प्रसन्न हो जाओगे, मस्त हो जाओगे।

सेवा करनेवाला कभी दुःखी नहीं होता। लेनेवाला सदा दुःखी होता है। उसको मिले तो भी वह राजी नहीं होगा कि थोड़ा मिला है! ज्यादा मिले तो उसको अभिमान आ जायगा। दुःख और आसुरी-सम्पत्ति उसके पास रहेगी; क्योंकि जड पदार्थ लेनेकी इच्छा है। इसलिये कहा है—**'देनेको टुकड़ा भला, लेनेको हरि नाम।'** एक साधुको मैंने देखा। एकान्तमें बैठकर नाम-जप कर रहे थे और आँखोंसे टप-टप आँसू बह रहे थे। मकानमें एक छोटी खिड़की थी, वह भी बन्द कर दी थी, जिससे न तो उनपर दूसरेकी दृष्टि पड़े और न उनकी दृष्टि दूसरेपर पड़े। रातमें उनको नींद नहीं आती थी। इस तरह लगनपूर्वक कोई नाम-जप करे तो उसको लाभ क्यों नहीं होगा? आप करके देखो। भूख तो पेटमें है, पर हलवा पीठपर बाँध दिया और कहते हैं कि तृप्ति नहीं हुई! उसको खाकर देखो कि तृप्ति होती है या नहीं।

तेरे भावैं जो करौ, भलौ बुरौ संसार।
'नारायण' तू बैठिके, अपनौ भुवन बुहार॥

—इस तरह अनन्यभावसे नाम-जपमें लग जाओ। गृहस्थमें रहते हुए सेवा करो। बहनों-माताओंको चाहिये कि वे आपसमें सेवा करें। चाहे देवरानी हो या जेठानी, सास हो या ननद, चाहे बहू ही हो, उसकी सेवा करो। जैसे कोई

पुजारी सेवा करनेके लिये बाजारसे भगवान्की मूर्ति लाता है तो वह यह नहीं सोचता कि इस मूर्तिसे घरका काम-धन्धा करायेंगे। ऐसे ही बेटेका विवाह किया है तो एक मूर्ति आयी है, अब उसकी सेवा करनी है। साधुओंको तो मूर्ति कहते ही हैं; जैसे पूछते हैं—कितनी मूर्ति है? मतलब यह है कि इन मूर्तियोंकी सेवा करनी है, सेवाके सिवाय ये कुछ कामकी नहीं! कोई जन्म गया तो ठाकुरजीके यहाँसे आया है, उसकी सेवा करो। सेवा करनेके लिये ही आपका सम्बन्ध है।

मेला महोत्सवोंमें सेवा-समितिवाले जाते हैं। कोई बीमार हो जाय तो वे उसको कैम्पमें लाते हैं, दवाई देते हैं, उसकी सेवा करते हैं और यदि वह मर जाय तो जला देते हैं। अब रोये कौन? ऐसे ही आप सबके साथ केवल सेवाका सम्बन्ध रखो तो आपका रोना बन्द हो जाय, चिन्ता बन्द हो जाय, शोक बन्द हो जाय। सबको सुख-आराम दो, सबका मान-आदर करो और परिश्रम खुद करो। आपका गृहस्थ सुखदायी हो जायगा। अगर सुख देने-ही-देनेकी इच्छा रहे तो सुख हो जायगा और लेने-ही-लेनेकी इच्छा रहे तो सुख कम हो जायगा। आज रुपये कम क्यों हो गये? संख्या तो घटी नहीं, फिर कम कैसे हो गये? जिसके पास रुपये आये, उसीने दबा लिये, इसलिये रुपये कम हो गये। कुछ वर्ष पहले रेजगारी (खुले पैसे) बहुत कम हो गयी थी। कारण कि एक-एक आदमीके पास बीस, पचास, सौ-सौ रुपयोंकी रेजगारी इकट्ठी की हुई होनेसे बाजारमें कहाँसे मिले? जिसके हाथ जितनी लगी, इकट्ठी कर ली। ऐसे ही अभी जो सुख मिलता नहीं है, उसका कारण यह है कि

सभी सुख लेनेमें लगे हुए हैं, खाऊँ-खाऊँ कर रहे हैं। अगर सब एक-दूसरेको सुख देने लग जायँ तो सुख बहुत हो जायगा।

घरमें रहते हुए घरके सब प्राणियोंकी सेवा करो। छोटे, बड़े, समान अवस्थावाले—सबको सुख-आराम कैसे पहुँचे? उनका आदर कैसे हो? यह भाव हरदम बना रहे। कई माताएँ सेवा करके फिर कहती हैं कि मैं इतनी सेवा करती हूँ, मेरा सुख तो गया धूलमें! सुख धूलमें गया तो बहुत अच्छी बात है, खेती हो जायगी! धूलमें बीज मिल जाय तो खेती हो जाती है। आप सेवा करते हैं, पर कोई आपका गुण नहीं गाता, आशीष नहीं देता तो यह बहुत ही बढ़िया चीज है। आपकी सेवा जमा हो जायगी। दूसरे वाह-वाह करेंगे तो आपकी सेवा खत्म (खर्च) हो जायगी। कुछ पानेकी इच्छासे सेवा करोगे तो सेवाकी बिक्री हो जायगी।

गृहस्थाश्रम उद्धार करनेके लिये है, फँसनेके लिये नहीं। सेवा करना उद्धारके लिये है और सेवा लेना फँसनेके लिये है। आप चाहते हो कि सब घरवाले मेरे अनुकूल बन जायँ तो यह पतनका, फँसनेका बढ़िया रास्ता है। जलमें जाकर दोनों हाथोंसे जल लोगे तो एकदम जलके भीतर चले जाओगे, डूब जाओगे। परन्तु दोनों हाथोंसे, लातोंसे जलको धक्का दोगे तो तैरकर पार हो जाओगे। ऐसे ही इस संसार-समुद्रमें लेनेकी इच्छा करोगे तो डूब जाओगे और देनेकी इच्छा करोगे तो पार हो जाओगे। हम सब यहाँ लेनेके लिये नहीं आये हैं, सेवा करनेके लिये आये हैं। इसलिये गृहस्थाश्रममें रहते हुए सबकी सेवा करो, सबका हित करो। प्राणिमात्रके हितमें जिनकी प्रीति हो जाती है, वे भगवान्‌को

प्राप्त हो जाते हैं—**'ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः'** (गीता १२। ४)। नहीं तो बैठकर संसारके झुनझुनेसे खेलो! उससे क्या मिलेगा? माँका प्यार, माँका दूध तो तब मिलेगा, जब आप झुनझुनेको, सीटी, पी-पीको फेंक दोगे, माँके बिना रह नहीं सकोगे।

मनुष्यको भगवान्‌ने मध्यलोकमें बनाया है, जिससे यह ऊँचे लोकोंकी भी सेवा करे, नीचेके लोकोंकी भी सेवा करे और इस लोककी भी सेवा करे। इतना ही नहीं, यह भगवान्‌की भी सेवा करे! भगवान् भी मनुष्यसे आशा रखते हैं। कुटुम्बी भी आशा रखते हैं। इनकी सेवा करो और स्वयं नाम-जप करो। दूसरोंसे भी नाम-जप करनेके लिये कहो—**'स्मरन्तः स्मारयन्तः'**, ***'रामनामकी लूट है, लूट सके तो लूट!'***, भगवान्‌का नाम मीठा लगे, प्यारा लगे। प्यारा न लगे तो भगवान्‌से कहो कि 'हे नाथ! मुझे आपका नाम प्यारा लगे, हे प्रभु! मैं आपको भूलूँ नहीं।' मिनट-मिनटमें, आधे-आधे मिनटमें कहते रहो कि 'हे नाथ! आपको भूलूँ नहीं।'

'भूले नाहिं बने कृपानिधि भूले नाहिं बने'

'विस्मर्यते कृतविदा कथमार्तबन्धो' (श्रीमद्भा० ४। ९। ८)

भगवान्‌की कृपाको जाननेवाला कोई भी पुरुष भगवान्‌को कैसे भूल सकता है? भगवान्‌ने कितनी विचित्र कृपा की है! सब अंग दिये हैं, मन दिया है, बुद्धि दी है, अच्छे घरमें जन्म दिया है। अच्छी जगह पले हो, अच्छे संस्कारमें आये हो, भगवान्‌को मानते हो, सत्संगमें जाते हो। कितना सुन्दर अवसर दिया है! अब थोड़ा-सा और करो तो निहाल हो जाओ!

जिन जीवोंको भगवान्‌ने मनुष्य-शरीर दिया है, उन

जीवोंको भगवान्‌ने अपने पास आनेका निमन्त्रण दे दिया है! जैसे ब्राह्मणको, साधुको कोई निमन्त्रण देकर अपने घर ले जाय, आसन देकर बैठा दे, सामने पत्तल और जल रख दे, तो फिर यह सोचनेकी जरूरत नहीं है कि वह अन्न देगा कि नहीं देगा? अगर वह अन्न नहीं देगा तो उसने निमन्त्रण क्यों दिया है? जब सब सामग्री दी है तो अन्न भी देगा। ऐसे ही भगवान्‌ने मनुष्य-शरीर दे दिया, अच्छी रुचि दे दी, अच्छा संग दे दिया, तो क्या अपनी प्राप्ति नहीं करायेंगे? वे तो तैयार हैं कि आओ, खूब मौजसे भोजन करो और सदाके लिये तृप्त हो जाओ! इसलिये भगवत्प्राप्तिकी चिन्ता न करके नाम-जप करो, संसारकी सेवा करो और आशा मत रखो। संसार आपसे सुखकी आशा रखता है। जो आपसे सुख चाहता है, उससे आप भी सुख चाहोगे तो दो ठगोंमें ठगाई कैसे होगी? आपके मनमें है कि भाई-बन्धु, माँ-बापसे मैं ले लूँ और वे चाहते हैं कि आपसे ले लें। दोनों ठग हुए। दोनों ठगे जायँगे और मिलेगा कुछ नहीं। जैसे भूखेको अन्न देनेका और प्यासेको जल पिलानेका बड़ा माहात्म्य है, ऐसे ही सेवा चाहनेवालोंकी सेवा करनेका बड़ा माहात्म्य है!

बहनोंको चाहिये कि ससुरालमें रहें तो सबकी सेवा करें। अपने पिताके घरमें रहें तो सबकी सेवा करें। मनमें यह भाव रखें कि मैं दूसरे घर चली जाऊँगी तो वहाँ इनकी—माता, पिता, चाचा, ताऊ, मामा, भाई, भौजाई आदिकी सेवा कहाँ मिलेगी? माता-पितासे शरीर मिला है, उन्होंने मेरा पालन-पोषण किया है। इतने कुटुम्बियोंसे मैंने लिया-ही-लिया है तो वापस कब दूँगी? इसलिये बहनोंको चाहिये कि

लड़कपनसे ही सेवा शुरू कर दें। पीहरसे लेना-ही-लेना किया तो सेवा कब करोगी? वे तो फिर भी उम्रभर देंगे। ससुरालमें अधिकार मिल गया तो अब वहाँ भी सबकी सेवा करो, सबको सुख पहुँचाओ। फिर देखो, आपका गृहस्थ भी शान्तिदायक हो जायगा और भगवान्‌की प्राप्ति भी हो जायगी।

केवल भाव बदल दो कि मैं तो सेवा करनेके लिये हूँ। रोजाना सुबह और शाम बड़ोंके चरणोंमें प्रणाम करो। काम-धन्धा खुद करो और सुख-आराम दूसरोंको दो। निन्दा, तिरस्कार, उलाहना, अपमान अगर मिलते हों तो खुद ले लो और मान-बड़ाई, आदर-सत्कार दूसरोंको दो। फिर आप देखो, कितना आनन्द होता है! कौटुम्बिक स्नेह भी हो जायगा और भजन भी हो जायगा। भजनका लाभ भी दीखेगा। संसारकी आशा रखोगे तो लाभ नहीं दीखेगा। रुपये मिल जायँ, आराम मिल जाय तो आपको यह लाभ दीखता है। इसके लिये आप रात-दिन दौड़ते रहते हैं। वह तो जितना मिलना है, उतना ही मिलेगा। नहीं मिलना है तो नहीं मिलेगा। परन्तु भगवान्‌का भजन असली धन है, जो करनेसे ही मिलेगा। नहीं करोगे तो नहीं मिलेगा। अतः इस असली धनका संग्रह करो।

४. कर्मयोगका तत्त्व

वास्तवमें कर्मयोग क्या है—इस बातको जाननेवाले बहुत कम हैं। तत्त्वज्ञ जीवन्मुक्त महापुरुषका मिलना कठिन है, पर कर्मयोगके तत्त्वको जाननेवाला मिलना उससे भी ज्यादा कठिन है! लगभग पाँच हजार वर्ष पहले भगवान्‌ने कहा था कि बहुत समय बीत जानेके कारण वह कर्मयोग लुप्तप्राय हो गया—**'स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप'** (गीता ४। २)। अब तो यह बहुत ही लुप्त हो गया है। ग्रन्थोंमें कर्मयोगका विवेचन नहीं आता। पढ़ाईमें भी कर्मयोगका विवेचन नहीं आता। सत्संगमें भी कर्मयोगका विवेचन नहीं मिलता। इसका अध्ययन लुप्तप्राय है। इसलिये कर्मयोगकी बात बड़ी कठिन मालूम देती है। कर्मयोगका विवेचन करनेमें कई घण्टे लग सकते हैं। मैं उसकी थोड़ी सार-सार बात बताता हूँ।

सबसे पहली बात यह है कि चाहे 'कर्मयोग' कह दो, चाहे 'निष्काम कर्म' कह दो, एक ही बात है। 'निष्काम कर्मयोग' शब्द बनता ही नहीं। इसका अर्थ ठीक नहीं बैठता। परन्तु अच्छे-अच्छे समझदार भी 'निष्काम कर्मयोग' कह देते हैं! इसलिये यह बात कहनेमें जरा कठिन पड़ती है कि 'निष्काम कर्मयोग' कहना बिलकुल गलत है। निष्काम कर्म कह दो या कर्मयोग कह दो, दोनों ठीक हैं। पर 'निष्काम कर्मयोग' कैसे बनेगा? परन्तु अब क्या करें? किसको कहें?

हमें एक बड़ा दुःख है कि भाइयोंमेंसे और बहनोंमेंसे

कोई भी इस तत्त्वको जाननेके लिये जिज्ञासु नहीं है, जाननेके लिये तैयार नहीं है। माननेके लिये मैं आग्रह करता ही नहीं। कम-से-कम यह है क्या—इसको जानो तो सही। मानो या मत मानो, आपकी मरजी। परन्तु तत्त्व क्या है—ऐसी भीतर लगन तो लगे। मेरी धारणामें इस तत्त्वको समझनेमें आप अयोग्य नहीं हैं, अनधिकारी नहीं हैं। आप सब-के-सब समझ सकते हैं। परन्तु जो समझना चाहे ही नहीं, उसका क्या करें?

योगकी परिभाषा गीताने दो जगह की है—समताका नाम योग है—'**समत्वं योग उच्यते**' (२।४८) और दुःखोंके संयोगका सर्वथा वियोग हो जाय, इसका नाम योग है—'**तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्।**' (६।२३) सम क्या है? सम हैं ब्रह्म—'**निर्दोषं हि समं ब्रह्म**' (५।१९)। दुःखोंका अत्यन्त अभाव कब होता है? परमानन्दकी प्राप्ति होनेपर होता है। कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग और हठयोग, राजयोग, मन्त्रयोग आदि कई योग हैं। उन सब योगोंका तात्पर्य है कि परमात्माके साथ जो नित्ययोग अर्थात् नित्य-सम्बन्ध है, उसकी जागृति हो जाय। परमात्माका जीवके साथ सदासे नित्ययोग है। कर्मयोग उसको कहते हैं, जिसमें कर्म संसारके लिये हो जाय और योग परमात्माके साथ हो जाय। अब उसको चाहे निष्कामभावसे कर्म करना कह दो, चाहे कर्मयोग कह दो।

श्रोता—कर्मयोगसे परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति कैसे होगी?

स्वामीजी—अब ध्यान दें। आपकी शंका है कि हम कर्म तो संसारके हितके लिये करते हैं, फिर उससे

परमात्माकी प्राप्ति कैसे हो जायगी? जैसे, बद्रीनारायण जा रहे हैं तो द्वारिका कैसे पहुँच जायँगे? कर किधर रहे हैं और प्राप्ति किधर हो रही है—ऐसा कहीं होता है? जा रहे हैं उत्तरमें और पहुँच जायँ दक्षिणमें अथवा जा रहे हैं दक्षिणमें और पहुँच जायँ उत्तरमें— यह कैसे होगा? सम्भव ही नहीं। इसलिये शंका होती है। बहुत ठीक शंका है।

सबसे पहले एक बात बताता हूँ, उस तरफ आप खयाल करें। परमात्मतत्त्व सब जगह है कि नहीं? इसके उत्तरमें जो भगवान्‌को मानते हैं, वे सब कहेंगे कि परमात्मा सब जगह हैं। यह मूल चीज है। इस विषयमें मैं चार बातें कहता हूँ—

१. परमात्मा सब जगह हैं, २. परमात्मा सब समयमें हैं, ३. परमात्मा सब वस्तुओंमें हैं और ४. परमात्मा सबके हैं। यह नहीं है कि मेरे तो वे कोई नजदीक पड़ते हों और आपसे कोई दूर पड़ते हों। परमात्मा पापी-से-पापी, दुराचारी-से-दुराचारीके भी उतने ही नजदीक हैं, जितने सन्त-महात्मा, जीवन्मुक्त, तत्त्वज्ञ, भगवत्प्रेमी आदिके नजदीक हैं। परमात्मा अपनी तरफसे दूर नहीं हैं, जीव ही उनसे विमुख हो जाता है।

परमात्मा सब जगह हैं तो यहाँ हैं कि नहीं? अगर परमात्मा यहाँ नहीं हैं तो वे सब जगह हैं—यह नहीं कह सकते। यहाँके सिवा सब जगह हैं—ऐसा कह सकते हैं, पर फिर भी 'सब जगह' शब्द प्रयोगमें नहीं ले सकते। ऐसे ही परमात्मा सब समयमें हैं तो इस समय हैं कि नहीं? अगर इस समय नहीं हैं तो वे सब समयमें हैं—यह कहनेकी किसीमें हिम्मत नहीं है। ऐसे ही परमात्मा सम्पूर्ण वस्तुओंमें

हैं तो हमारेमें हैं कि नहीं? शरीर, प्राण, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और अहम् (मैं हूँ)—इन सबमें परमात्मा हैं कि नहीं? अगर इनमें नहीं हैं तो परमात्मा सम्पूर्ण वस्तुओंमें हैं—यह कहना कभी नहीं बन सकता। मैं जहाँ हूँ, वहाँ परमात्मा नहीं हैं—ऐसा कह सकते हो क्या? किसी भी आस्तिककी यह कहनेकी हिम्मत नहीं होगी कि मेरेमें परमात्मा नहीं हैं। परमात्मा सबके हैं तो मेरे भी हैं। अगर वे मेरे नहीं हैं तो वे सबके हैं—यह कहना बनता ही नहीं। सब जीव उनके अंश हैं—'**ममैवांशो जीवलोके**' (गीता १५। ७), '***ईस्वर अंस जीव अबिनासी***' (मानस, उत्तर० ११७। १)। भगवान् कहते हैं कि मैं प्राणिमात्रका सुहृद् हूँ—'**सुहृदं सर्वभूतानाम्**' (गीता ५। २९) वे किसी एकके भी सुहृद् न हों, यह नहीं हो सकता। जो सब जगह हैं, सब समयमें हैं, सब वस्तुओंमें हैं और सबके हैं—ऐसे परमात्माको प्राप्त करनेके लिये क्या करें? किसी भी एक योगका अनुष्ठान करें। यहाँ प्रसंग कर्मयोगका है, इसलिये अब कर्मयोगकी बात कहता हूँ।

कर्मोंसे परमात्माका योग (नित्य-सम्बन्ध) कब होगा? जब हम अपने लिये कोई कर्म नहीं करें। खाना-पीना, उठना-बैठना, सोना-जागना, चिन्तन करना, भजन-ध्यान करना और समाधि लगाना भी अपने लिये बिलकुल न करें, तब कर्मयोग होगा, नहीं तो कर्मभोग होगा। अपने लिये कर्म करनेसे भोग होता है, योग नहीं होता। यह मूल बात है।

अपने लिये कोई कर्म नहीं करना है—यह सुनकर आदमी अटक जाता है कि अपने लिये नहीं करें तो किसके लिये करें? एक बात मैं कहता हूँ, अगर आपके विरुद्ध पड़े

तो क्षमा करें। जप भी अपने लिये नहीं, तप भी अपने लिये नहीं, समाधि भी अपने लिये नहीं, प्रार्थना भी अपने लिये नहीं—इनको अपने लिये नहीं करना है। कारण कि मूलमें हम परमात्माके अंश हैं—

ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥

(मानस, उत्तर० ११७।२)

जो चेतन, मलरहित और सुखराशि है, उसके लिये क्या करना पड़ेगा? उसके लिये कुछ नहीं करना है। हम अपने लिये करते हैं—यही बन्धन है। यह बात थोड़ी कठिन पड़ती है हरेककी समझमें नहीं आती। परन्तु अपने लिये करेंगे तो बन्धन होगा। कैसे बन्धन होगा? कुछ भी कर्म करें, उस कर्मका आरम्भ होगा कि नहीं? और उसकी समाप्ति होगी कि नहीं? कोई भी कर्म किया जायगा तो उसका आरम्भ होगा और उसकी समाप्ति होगी। उसका जो फल मिलेगा, उसका भी संयोग होगा और वियोग होगा। वह आपके लिये उपयोगी कैसे होगा, जबकि आप नित्य रहनेवाले हो?

खूब गहरी रीतिसे ध्यान दो। अपने लिये कुछ भी नहीं करना है—यह वेदान्तका भी सिद्धान्त है, अद्वैतमार्गका भी सिद्धान्त है, भक्तिमार्गका भी सिद्धान्त है। जितने दार्शनिक हैं, उनका भी यह मत है। जीवात्मा परमात्माका साक्षात् अंश है। वह कर्मोंसे न बढ़ता है, न घटता है—'**कर्मणा न वर्द्धते नो कनीयान्।**' वह ज्यों-का-त्यों रहता है। आप चाहते हो कि वह कर्मोंसे हमारेको मिल जाय, यहीं गलती होती है। हम जो कर्म करें, दूसरोंके लिये करें। संसारके पदार्थ और क्रियामात्र दूसरोंके लिये हैं; क्योंकि पदार्थ और क्रिया—ये

दोनों प्रकृतिके हैं, परमात्माके नहीं। परमात्मा पदार्थ और क्रियासे रहित हैं।

परमात्मा सब वस्तुओंमें हैं और सब क्रियाओंमें हैं। सबमें रहते हुए भी परमात्मा सबसे परे हैं, निर्लिप्त हैं। परमात्मामें लिप्तता है ही नहीं। हम कर्म करते हैं और फल चाहते हैं—यही गुणोंका संग है, जिससे ऊँच-नीच योनियोंमें जन्म लेना पड़ता है (गीता १३। २१)। कर्मका फल विनाशी ही होता है, अविनाशी नहीं। फल वही होता है, जो पहले नहीं होता, प्रत्युत पैदा होनेवाला और नष्ट होनेवाला होता है। अतः परमात्मतत्त्व कर्मका फल नहीं हो सकता।

ज्ञानसे जो बोध होता है, वह फल नहीं है। भक्तिमें जो प्रेम होता है, वह फल नहीं है। कर्मयोगसे जो योग होता है, वह फल नहीं है। फल कभी भी होगा, नाशवान् ही होगा। फल अविनाशी हो ही नहीं सकता, कभी सम्भव ही नहीं। फिर कर्म किसलिये किया जाय? संसारमें जो राग है, उस रागकी निवृत्तिके लिये कर्म किया जाय। कर्म रागकी पूर्तिके लिये भी किया जाता है और रागकी निवृत्तिके लिये भी। कर्मका आरम्भ केवल रागकी निवृत्तिके लिये किया जाय। हमने जडके साथ जो सम्बन्ध जोड़ा है, उस सम्बन्धके विच्छेदके लिये कर्म किया जाय। सम्बन्ध-विच्छेद तभी होता है, जब कर्म दूसरोंके लिये किया जाय। अपने लिये कर्म किया जायगा तो सम्बन्ध-विच्छेद नहीं होगा।

स्थूलशरीरसे आप दूसरोंकी सेवा करो, स्थूल पदार्थोंका दान करो, पर उसका फल मत चाहो। कारण कि हमारी न क्रिया है और न पदार्थ है, फिर क्रिया करना और दान-

पुण्य करना हमारे लिये कैसे होगा? ऐसे ही सूक्ष्मशरीरसे यह चिन्तन किया जाय कि प्राणिमात्रका हित कैसे हो? सबका कल्याण कैसे हो? सबका उपकार कैसे हो? सबकी सेवा कैसे बने? अब रही कारणशरीरकी बात! कारणशरीर अविद्या कहलाता है और उसमें स्वभाव मुख्य रहता है। इससे आगे हम कुछ नहीं जानते—इसका नाम कारणशरीर है। स्थूलशरीरमें जाग्रत्-अवस्था, सूक्ष्मशरीरमें स्वप्न-अवस्था और कारणशरीरमें सुषुप्ति-अवस्था (गाढ़ निद्रा) होती है। ये तीनों अवस्थाएँ प्रकृतिके संगसे होती हैं। समाधि कारणशरीरकी होती है। समाधिमें किंचिन्मात्र भी स्फुरणा नहीं होती, एकदम स्थिरता रहती है। यह समाधि भी हमारे लिये नहीं है, तभी कर्मयोग होगा। कारण कि समाधि भी कर्म है। जैसे '**गच्छति**' क्रिया है, '**चिन्तयति**' क्रिया है, '**ध्यायते**' क्रिया है, ऐसे ही '**समाधीयते**' भी क्रिया है। करना भी क्रिया है और न करना भी क्रिया है। भगवान् कहते हैं—'**नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन।**' (गीता ३।१८) अर्थात् कर्मयोगसे सिद्ध हुए महापुरुषका इस संसारमें न तो कर्म करनेसे कोई प्रयोजन रहता है और न कर्म न करनेसे ही कोई प्रयोजन रहता है। अतः करना भी हमारे लिये नहीं और न करना भी हमारे लिये नहीं।

शरीर और वस्तुओंके द्वारा दूसरोंका हित किया जाय तो शरीर और वस्तुओंकी शुद्धि होती है। ऐसे ही दूसरोंके हितका चिन्तन किया जाय तो मन-बुद्धिकी शुद्धि होती है। भगवान् कहते हैं कि जो प्राणिमात्रके हितमें रत होते हैं, वे मेरेको प्राप्त होते हैं—

'ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः॥'

(गीता १२।४)

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः॥

(गीता ५।२५)

—सगुण और निर्गुण—दोनोंकी प्राप्तिके लिये **'सर्वभूतहिते रताः'** पद आया है। दूसरोंके हितके लिये हम कितना कर सकते हैं—इसका कोई ठेका नहीं है। आपकी रति, रुचि, प्रीति दूसरोंके हितमें हो।

परहित बस जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥

(मानस, अरण्य० ३१।९)

जिनके हृदयमें दूसरेके हितका भाव रहता है, उनके लिये कुछ भी करना बाकी नहीं रहता।

गीध अधम खग आमिष भोगी। गति दीन्ही जो जाचत जोगी॥

(मानस, अरण्य० ३३।२)

योगी जिस गतिके लिये याचना करते हैं, वह गति भगवान्‌ने गीधको दे दी! वह (गीधराज जटायु) चतुर्भुजरूप धारण करके हरिरूपसे वैकुण्ठको गया। उसके लिये भगवान्‌ने कहा—*'तात कर्म निज तें गति पाई'* (मानस, अरण्य० ३१।८) अर्थात् इसमें मेरा कोई एहसान नहीं है, अपने कर्मसे तुमने यह गति पायी है। कर्म क्या? सीताजीकी रक्षाके लिये रावणसे युद्ध किया। सीताजी जब अपनी रक्षाके लिये पुकारने लगीं, तब उसने देखा—ओ हो! ये तो रघुकुलतिलक श्रीरामकी स्त्री है और दुष्ट लिये जा रहा है। वह जोरसे बोला—बेटी! तू चिन्ता मत कर, मैं अभी आया! जगज्जननी सीताजीको वह बेटी कहकर पुकारता है! इसका कारण यह

था कि वह दशरथजीका मित्र था। दशरथजीकी पुत्रवधू मेरी पुत्रवधू ही हुई, मेरी बेटी ही हुई—इस भावसे वह बेटी कहकर बोला। रावणसे उसने ऐसी लड़ाई की कि रावणको मूर्च्छा आ गयी! लड़ते-लड़ते जब रावणने तलवारसे उसके पंख काट दिये तो वह नीचे गिर पड़ा; क्योंकि पक्षीके पास पंखोंका ही बल रहता है। इस प्रकार उसने दूसरेके हितके लिये अपने—आपकी आहुति दे दी, इसलिये उसको परमगति प्राप्त हुई। भगवान् इसमें (परमगति देनेमें) अपना कोई एहसान नहीं मानते।

कर्म करनेकी सब सामग्री संसारकी है। यह पांचभौतिक स्थूलशरीर स्थूल-सृष्टिका एक अंश है, सूक्ष्मशरीर समष्टि सूक्ष्म-सृष्टिका एक अंश है और कारणशरीर कारण-सृष्टिका एक अंश है। संसारकी सामग्रीसे कर्म करके अपने लिये चाहते हैं—यही महान् अनर्थका हेतु है। यही असत्का, नाशवान्का संग है, जिससे जन्म-मरण होता है।

एक बहुत ही विलक्षण बात बताऊँ! आपके पास कितनी योग्यता है, कितनी सामर्थ्य है, कितने पदार्थ हैं, कितनी विद्या है—इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। बड़े-से-बड़ा विद्वान् और मूर्ख-से-मूर्ख भी अपने लिये कोई कर्म न करे तो मुक्त हो जायगा! इसमें योग्यता आदि कोई काम नहीं देगी; क्योंकि वह तो उत्पत्ति-विनाशवाली है, आने और जानेवाली है; अतः उसके द्वारा नित्य रहनेवाला तत्त्व थोड़े ही मिलेगा! आपके पास बढ़िया या घटिया कैसी सामग्री है, कितनी योग्यता है, आप कैसे अधिकारी हैं—इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। इसकी आवश्यकता वहाँ होती है, जहाँ योग्यता काम करती है, विद्या काम करती है, सामग्री काम करती

है। ये चीजें संसारमें काम आती हैं। संसारमें आपकी जैसी योग्यता, सामर्थ्य होगी, वैसा मिलेगा। संसारमें अधिकार योग्यताके अनुसार मिलता है। आप कर्म करोगे, योग्यता लाओगे, उसके अनुसार आपको संसारका फल मिलेगा। परन्तु भगवत्प्राप्तिमें इन चीजोंकी कोई आवश्यकता नहीं है। वहाँ केवल त्यागकी आवश्यकता है।

आपके सामने कैसी ही परिस्थिति हो, चाहे सौम्य हो या घोर उसीमें भगवत्प्राप्ति हो सकती है। अर्जुनने भी कह दिया कि मेरेको युद्ध-जैसे घोर कर्ममें क्यों लगाते हैं—'**घोरे कर्मणि किं नियोजयसि**' (गीता ३। १)? युद्धमें दिनभर मनुष्योंका गला काटनेका लक्ष्य रहता है। ऐसे हिंसात्मक कर्मको करते हुए भी मनुष्यका कल्याण हो सकता है! भगवान् कहते हैं—

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥

(गीता २। ३८)

(जय-पराजय, लाभ-हानि और सुख-दुःखको समान करके फिर युद्धमें लग जा। इस प्रकार युद्ध करनेसे तू पापको प्राप्त नहीं होगा।) पापका निवास विषमतामें है, समतामें नहीं। समताका नाम योग है। इसलिये समतामें स्थित होकर युद्ध करनेसे पाप नहीं लगता। वास्तवमें जय-पराजय, लाभ-हानि और सुख-दुःखको समान करना नहीं है, प्रत्युत वे तो स्वाभाविक ही समान हैं। जैसे, सुख आते हुए अच्छा लगता है, जाते हुए बुरा लगता है और दुःख आते हुए बुरा लगता है, जाते हुए अच्छा लगता है। एक तरफ सुख अच्छा और एक तरफ दुःख अच्छा। एक तरफ सुख बुरा और

एक तरफ दुःख बुरा। सुख और दुःखमें क्या भेद हुआ? इन दोनोंमें जो राग-द्वेष कर लेते हैं, बस कर्मयोगमें यही खास बाधा है। राग-द्वेषके कारण ही मनुष्य कर्मोंसे लिप्त हो जाता है, बँध जाता है।

कर्मयोगकी महिमा गाते हुए भगवान् पाँचवें अध्यायके तीसरे श्लोकमें कहते हैं—'जो न किसीसे द्वेष करता है और न किसीकी इच्छा करता है, वह नित्य-संन्यासी समझनेयोग्य है; क्योंकि द्वन्द्वोंसे रहित मनुष्य सुखपूर्वक संसार-बंधनसे मुक्त हो जाता है।' जो राग-द्वेष नहीं करता, वह कर्मयोगी नित्य-संन्यासी है। लाभ-हानि, सुख-दुःख, मान-अपमान, निन्दा-स्तुति, जीना-मरना आदि द्वन्द्वोंसे रहित होनेसे वह सुखपूर्वक बन्धनसे मुक्त हो जाता है। सभी द्वन्द्व प्रकृतिमें हैं। द्वन्द्वरहित होनेसे स्वरूपमें स्थिति स्वतः होती है। मनुष्य द्वन्द्वरहित कब होता है? जब वह अपने लिये किंचिन्मात्र भी नहीं करता।

जब मनुष्य अपने लिये कर्म करता है, तब उसका प्रकृतिके साथ सम्बन्ध हो जाता है। प्रकृतिका सम्बन्ध जन्म-मरण देता है। जो अपने लिये कुछ नहीं करता, उसको कोई जन्म-मरण कैसे दे सकता है? दुनियामें जितने कर्म होते हैं, उनका पाप-पुण्य हमें नहीं लगता। हम अपने लिये जो कर्म करते हैं, उन्हींका पाप-पुण्य हमें लगता है। अगर हम अपने लिये कुछ न करें तो हमें कोई पाप-पुण्य नहीं लगेगा। अपने लिये कुछ भी करेंगे और कुछ भी चाहेंगे तो योग नहीं होगा, प्रत्युत भोग होगा तथा कर्मोंसे बन्धन होगा—

'कर्मणा बध्यते जन्तुः।'

मैं तो सीधी-सादी बात कहता हूँ कि अगर आप घरमें

रहते हैं तो घरमें रहनेकी विद्याको सीख लें। बड़ी सीधी-सरल विद्या है। अगर आप सास हैं तो बहू-बेटोंके लिये मैं सास और माँ हूँ, वे मेरे लिये नहीं हैं। आप बहू हैं तो सास-ससुरके लिये मैं हूँ, वे मेरे लिये नहीं हैं। आप पति हैं तो स्त्रीके लिये मैं हूँ, वह मेरे लिये नहीं है। यह एक धारणा आप कर लो कि उनके लिये मैं हूँ, वे मेरे लिये नहीं हैं। वे मेरे लिये हैं—यह भाव भीतरसे मिटा दो तो आपकी खटपट मिट जायगी। यह घरमें रहनेकी, संसारमें रहनेकी असली विद्या है।

चेला बने हो तो केवल गुरुके लिये बने हो। अपने लिये गुरुकी जरूरत नहीं है। मेरे लिये गुरु नहीं, मैं गुरुके लिये हूँ। मेरे लिये पिता नहीं, मैं पिताके लिये हूँ। मेरे लिये पुत्र नहीं, मैं पुत्रके लिये हूँ। आपके जितने भी सांसारिक सम्बन्ध हैं, वे सब-के-सब सम्बन्ध केवल उनकी सेवा करनेके लिये हैं। लेनेके लिये कोई सम्बन्ध है ही नहीं। लेनेका खाता ही उठा दें। तो क्या होगा? जो सब जगह हैं, सब समयमें हैं, सबके हैं, सबमें हैं, उनकी प्राप्ति हो जायगी।

साधु हैं तो हमारे लिये गृहस्थ नहीं हैं, हम गृहस्थके लिये हैं। वे हमारे लिये नहीं हैं, हम उनके लिये हैं—इतनी-सी बात है! यह बात छोटी-सी है, पर महान् लाभ देनेवाली है। अगर आपकी नीयत प्राणिमात्रका हित करनेकी है तो आपका बन्धन नहीं होगा। इसमें धनकी, विद्याकी, योग्यता आदिकी कोई जरूरत नहीं है। कर्मयोगी वही होता है, जो जैसी भी परिस्थिति आये, उसका उपयोग केवल दूसरोंके हितके लिये करता है।

हमने पहले अपने सुखके लिये किया है, इसीलिये

दूसरोंके सुखके लिये करना है, नहीं तो इसको करनेकी भी जरूरत नहीं थी। सेवा करनेसे पुराना कर्जा उतर जायगा और नया कर्जा लोगे नहीं, तो क्या होगा? जैसे किसी दुकानदारको अपनी दुकान उठानी हो तो उसपर जो कर्जा है, उसको तो चुका दे और दूसरोंसे जो लेना है, वे दें तो ले ले, नहीं तो छोड़ दे। ऐसा करनेसे दुकान उठ जायगी। अगर सब-का-सब रुपया लेना चाहेगा तो दुकान उठेगी नहीं। अपनेपर जो कर्जा है, वह पूरा-का-पूरा दे दे। ऐसे ही दूसरोंका हित करना कर्जा चुकाना है, इसमें कोई महत्ताकी बात नहीं है। नया कर्जा लेना नहीं है अर्थात् किसीसे किंचिन्मात्र भी सुख चाहना नहीं है। नया कर्जा लिया नहीं और पुराना कर्जा चुका दिया तो मुक्ति नहीं होगी तो क्या होगी?

दूसरेका हित कितना करे? अपनी शक्तिके अनुसार। माल पर जगात लगती है। इनकम (आय) पर टैक्स लगता है। माल ही नहीं तो जगात किस बातकी? दूसरेके हितके लिये जितना कर सकते हो, कर दो; बस, आपका काम एकदम पूरा हो गया! जो नहीं कर सकते, उसकी कोई आशा भी नहीं रख सकता। आप मेरेसे सुननेकी आशा रखते हो, पर मेरेको जाननेवाले क्या मेरेसे ऐसी आशा रखते हैं कि स्वामीजी हमें दस हजार रुपये दे दें? जो चीज मेरे पास नहीं है, उस चीजकी आशा आप नहीं रखते। ऐसे ही जो चीज आपके पास नहीं है, उसकी आशा भगवान् रखेंगे क्या? क्या भगवान् आप-जितने भी समझदार नहीं हैं? आप जितना कर सकते हैं, उतना करनेमें कमी न रखें।

आपके पास चार चीजें हैं—समय, समझ, सामग्री और सामर्थ्य (शक्ति)। आपके पास ये चारों चीजें जितनी हैं,

उतनी-की-उतनी दूसरोंके हितमें लगा दो तो कल्याण हो जायगा। आपके पास जितना है, उतना लगा दो—इतनी ही आशा भगवान् रखते हैं और इतनी ही आशा संसार रखता है। अगर दूसरे आपसे अधिक आशा रखते हैं तो यह उनकी गलती है। समय पूरा दे दिया, अब और समय कहाँसे लायें? चौबीस घण्टे दे दिये, अब पचीसवाँ घण्टा कहाँसे लायें? जितनी समझ है, सामग्री है, सामर्थ्य है, वह सब लोगोंके हितमें लगा दी, अब अधिक कहाँसे लायें? आपके पास जो कुछ है, उसको दूसरोंके हितमें लगानेका भाव हो जाय कि वह हमारा और हमारे लिये नहीं है, प्रत्युत दूसरोंको और दूसरोंके लिये है, तो असंगता स्वतः प्राप्त हो जायगी।

असंगता हमारा स्वरूप है—'**असंगो हि अयं पुरुषः**' (बृहदारण्यक ४। ३। १५)। जो असंगता ज्ञानयोगीको विचार करनेसे प्राप्त होती है, वही असंगता कर्मयोगीको दूसरोंके लिये कर्म करनेसे प्राप्त हो जाती है। इन दो श्लोकोंको खूब ध्यान देकर पढ़ो, याद कर लो—

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम्॥
यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति॥

(गीता ५। ४-५)

'बेसमझ लोग ही सांख्य (ज्ञानयोग) और योग (कर्मयोग)-को अलग-अलग बताते हैं, न कि पण्डितजन। कारण कि इन दोनोंमेंसे एक साधनमें भी अच्छी तरहसे स्थित मनुष्य दोनोंके फलरूप परमात्माको प्राप्त कर लेता है। ज्ञानयोगी

जिस तत्त्वको प्राप्त करते हैं, कर्मयोगी भी उसी तत्त्वको प्राप्त करते हैं। अतः जो मनुष्य ज्ञानयोग और कर्मयोगको फलरूपमें एक देखता है, वही ठीक देखता है।'

कोई भी पढ़ा-लिखा आदमी इन श्लोकोंपर विचार करके विवाद नहीं कर सकता, इतनी पक्की बात है! ज्ञानके बिना मुक्ति नहीं हो सकती; कर्मयोगसे अन्तःकरणका मल-दोष दूर होता है—ऐसा मान लो तो कोई हर्ज नहीं; क्योंकि इस सिद्धान्तको भी मैं मानता हूँ, मेरा विरोध नहीं है। परन्तु एक बात अधिक मानता हूँ कि कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग—तीनों ही साधन स्वतन्त्रतासे मुक्ति करते हैं। गीता स्पष्ट कह रही है—

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति॥

(गीता ५। ६)

'महाबाहो! कर्मयोगके बिना ज्ञानयोग सिद्ध होना कठिन है। मननशील कर्मयोगी शीघ्र ही ब्रह्मको प्राप्त हो जाता है।'

इसलिये अपने स्वार्थका, अभिमानका, आसक्तिका, कामनाका त्याग करना है; क्योंकि ये सब हमारा सम्बन्ध संसारके साथ जोड़ते हैं। याद रखो, संसारके साथ सम्बन्ध केवल हमारा जोड़ा हुआ है। परन्तु परमात्माके साथ सम्बन्ध स्वतःसिद्ध है, जोड़ा हुआ नहीं है। इसमें भी विलक्षण बात यह है कि पदार्थोंने, शरीरने, दूसरोंने, किसीने भी आपको नहीं बाँधा है, आपके साथ सम्बन्ध नहीं जोड़ा है। आपने ही उनके साथ सम्बन्ध जोड़ा है। इसलिये आप इस सम्बन्धको छोड़ना चाहो तो छोड़ सकते हो।

रुपयोंने कभी नहीं कहा कि हम तुम्हारे हैं, तुम हमारे

हो। मकानने कभी नहीं कहा कि हम तुम्हारे हैं, तुम हमारे हो। अकेले आपने ही मेरे रुपये, मेरा मकान, मेरा शरीर, मेरा मन, मेरी बुद्धि, मेरा अहंकार—ऐसे मेरापन किया है। इसलिये अकेले आपको ही छोड़ना पड़ेगा। प्रकृति और प्रकृतिके कार्य (शरीर-संसार)-ने कभी आपको अपना नहीं कहा, कभी आपको अपना नहीं माना। वह तो तेजीसे जा रहा है, खत्म हो रहा है। आप उसको अपना मानते हैं—यही बन्धन है। उसको अपना न मानकर सेवामें लगा दें तो उसका प्रवाहमात्र संसारकी तरफ हो जायगा और आप स्वयं ज्यों-के-त्यों निर्लेप रह जायँगे।

श्रोता—भीतरमें जो अज्ञान है, उसको मिटानेके लिये क्या करें?

स्वामीजी—स्थूलशरीरसे की जानेवाली क्रिया, सूक्ष्मशरीरसे किया जानेवाला चिन्तन और कारणशरीरसे की जानेवाली समाधि भी केवल संसारके हितके लिये हो तो फिर सब अज्ञान मिट जायगा। जडतासे सम्बन्ध-विच्छेद हो जायगा और चिन्मय तत्त्वकी स्वतः जागृति हो जायगी।

आपके पास जो धन है, पद है, वह अपने लिये बिलकुल नहीं है। उसको अपना मान लिया—यह बेईमानी है। इस बेईमानीको मिटाना है और कुछ नहीं करना है। साधक हो, पर बेईमानी भी नहीं छोड़ सकते और कल्याण चाहते हो! स्थूलशरीरको अपना मानना बेईमानी है, सूक्ष्मशरीरको अपना मानना बेईमानी है और कारणशरीरको अपना मानना बेईमानी है। स्थूल, सूक्ष्म और कारण—इन तीनों शरीरोंका सम्बन्ध संसारके साथ है, आपके साथ नहीं। ये तीनों आपके नहीं हैं और आप इनके नहीं हैं।

यदि पापका फल (दुःख) हमारेको बिना माँगे मिलता है तो पुण्यका फल (सुख) बिना माँगे क्यों नहीं मिलेगा? उसको झख मारकर मिलना पड़ेगा। क्या बीमारीकी कभी चाहना करते हो? उद्योग करते हो? कभी ज्योतिषीसे पूछते हो कि क्या करें, बीमारी नहीं आयी? महाराज, देखो तो, कब आयेगी? पाँच-सात वर्ष हो गये, हमारे घरमें कोई मरा नहीं, कौन कब मरेगा—ऐसी इच्छा होती है क्या? दस वर्ष हो गये, व्यापारमें घाटा नहीं लगा, कब लगेगा—यह चाहना होती है क्या? क्या घाटेके लिये उद्योग करते हो? फिर भी लगता है कि नहीं? तात्पर्य है कि जैसे बिना चाहे दुःख मिलता है, ऐसे ही बिना चाहे सुख भी मिलता है, फिर सुखकी चाहना क्यों करें?

जो हमें पापोंका फल तो जबर्दस्ती भुगताये और पुण्योंके फलके लिये हमारेसे नाक रगड़वाये, वह भी कोई भगवान् हो सकता है? अगर वह हमें जिलाना चाहता है तो रोटी दे दे, नहीं तो हमें जीनेकी गरज नहीं है। किसी चीजके लिये हम उसको क्यों कहें? हमारी अपेक्षा उसको गरज ज्यादा है। इसलिये निःशंक हो जाओ, निश्चिन्त हो जाओ, निर्भय हो जाओ और निःशोक हो जाओ। न शंका है, न चिन्ता है, न भय है, न शोक है! तत्परतासे अपने कर्तव्य-कर्मका पालन करो—

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः॥
कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।
लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि॥

(गीता ३। १९-२०)

'तू निरन्तर आसक्तिरहित होकर कर्तव्य-कर्मका भलीभाँति आचरण कर; क्योंकि आसक्तिरहित होकर कर्म करता हुआ मनुष्य परमात्माको प्राप्त हो जाता है। राजा जनक-जैसे अनेक महापुरुष भी कर्मके द्वारा ही परमसिद्धिको प्राप्त हुए हैं। इसलिये लोकसंग्रहको देखते हुए भी तू (निष्कामभावसे) कर्म करनेके योग्य है।'

कर्मयोगका प्रचार नहीं है, पुस्तकें नहीं हैं, जानकार नहीं हैं, इसलिये इसमें कठिनता दीखती है। वास्तवमें कठिनता नहीं है। कर्मयोग बहुत सुगम है, सरल है। करना चाहो तो सरल हो जायगा। कामनाके कारण पहले कठिनता मालूम देगी, पर कामना छूटनेपर सुगम हो जायगा। कर्मयोग बहुत ही विलक्षण चीज है।

गीताने बहुत ही अलौकिक बात बतायी है कि आप जहाँ हैं, जिस वर्णमें हैं, जिस आश्रममें हैं, जैसी परिस्थितिमें हैं, केवल उसीका सदुपयोग करना है। उसीसे मुक्ति हो जायगी! न कहीं जाना है, न वर्ण बदलना है, न आश्रम बदलना है, न सम्प्रदाय बदलना है, न देश बदलना है, न वेश बदलना है। बदलना है मनका भाव। केवल प्राप्त परिस्थितिका सदुपयोग करना है।

५. सुगम साधन

प्रह्लादजी असुर-बालकोंको उपदेश देते हुए कहते हैं कि भगवान्‌की प्राप्तिमें क्या प्रयास है—**'कोऽतिप्रयासोऽसुरबालका'** (श्रीमद्भागवत ७। ७। ३८)? विषयोंकी एक बात ध्यान देनेकी है कि संसारकी वस्तुएँ सब देशमें सब समयमें नहीं हैं। उनकी प्राप्तिके लिये विशेष परिश्रम करना पड़ता है। परन्तु परमात्मा सब देशमें हैं, सब कालमें हैं, सम्पूर्ण व्यक्तियोंमें हैं, सम्पूर्ण घटनाओंमें हैं। ऐसा कोई देश, काल, व्यक्ति, वस्तु नहीं है, जहाँ परमात्मा न हों। उनकी प्राप्तिमें तो केवल तीव्र इच्छाकी ही आवश्यकता है। जैसे हमारे पास कोई चीज हो तो उस तरफ दृष्टि घुमाई और देखी! परन्तु परमात्माको देखनेके लिये दृष्टि घुमानेकी भी आवश्यकता नहीं है; क्योंकि परमात्मा बाहर-भीतर सब जगह हैं। इसलिये उनकी प्राप्तिकी इच्छा करो और उनको प्राप्त कर लो!

परमात्माकी प्राप्तिमें प्रयासकी आवश्यकता नहीं है। इसमें तो केवल अभिलाषाकी आवश्यकता है। वह अभिलाषा भी कठिन नहीं है। वास्तवमें वह अभिलाषा मनुष्यमात्रमें स्वतः-स्वाभाविक है; क्योंकि मनुष्यमात्र अपनेमें कमीका अनुभव करता है। परन्तु उससे भूल यह होती है कि वह इसकी पूर्ति संसारसे करना चाहता है। संसारकी सब वस्तुएँ सभीको प्राप्त होती नहीं, हुई नहीं और होंगी भी नहीं तथा मिल भी गयीं तो रहेंगी नहीं। वस्तुएँ रह भी गयीं तो आप नहीं रहेंगे। उनसे वियोग तो अवश्य होगा। पहले भी वियोग था

और बादमें भी वियोग होगा। बीचमें संयोग केवल दीखता है, वास्तवमें है नहीं। फिर भी हम उन वस्तुओंसे अपना सम्बन्ध मान लेते हैं और उनकी इच्छा करते हैं, यह बहुत बड़ी भूल है।

आपने शरीरके साथ एकता मान ली कि यह शरीर मैं हूँ और शरीर मेरा है, यह है खास गलती! आप शरीर नहीं हैं; क्योंकि यदि आप शरीर होते तो मरते ही नहीं और यदि मरते तो शरीरको साथ ले जाते। मरनेके बाद शरीर (मुर्दा) पड़ा रहता है तो उसमें भी हम होते। परन्तु न तो शरीर हमारे साथ जाता है और न शरीरके साथ हम रहते हैं। अतः अपनेको शरीर मानना भी गलत है और शरीरको अपना मानना भी गलत है। शरीरको हम जैसा रखना चाहें, वैसा रख नहीं सकते, इसपर हमारा वश नहीं चलता, फिर यह अपना कैसे? यदि शरीर अपना नहीं है तो फिर धन, सम्पत्ति, वैभव, कुटुम्ब आदि अपने कैसे? अतः संसार अपना नहीं है, अपने तो केवल भगवान् ही हैं—यह माननेमें क्या कठिनता है? संसारको अपना माननेसे ही जो वास्तवमें अपने हैं, उन परमात्माको अपना माननेमें कठिनता हो रही है।

परमात्मा अपने हैं—यह शास्त्र कहता है, और संसार अपना नहीं है—यह आपका अनुभव कहता है। यह बात भले ही आप अभी न मान सको, भले ही आपसे मानी नहीं जा रही हो; परन्तु हिम्मत मत हारो। यह मत सोचो कि हम तो इस बातको मान नहीं सकते। भले ही हमारे माननेमें न आ रही हो, पर वास्तवमें 'मैं शरीर हूँ, शरीर मेरा है' यह बात है नहीं—इस बातको स्थिर रखो। आपके

माननेमें आये चाहे न आये, अनुभव हो चाहे न हो—इसकी चिन्ता मत करो; परन्तु इस बातको रद्दी मत करो।

शरीर 'मैं' नहीं है और 'मेरा' नहीं है—यह बात सच्ची है एवं मैं भगवान्‌का हूँ और भगवान् मेरा है—यह बात भी सच्ची है। सच्ची होनेपर भी माननेमें नहीं आती तो यह हमारी एक कमजोरी है। हमारे न माननेसे सच्ची बात रद्दी (गलत) कैसे हो सकती है?

श्रोता—हम इस बातको रद्दी कैसे करते हैं?

स्वामीजी—इन्द्रियोंके द्वारा, बुद्धिके द्वारा हम जिन वस्तुओंको देखते हैं, उनको सच्ची और अपनी मान लेते हैं; इससे वह बात रद्दी हो जाती है। उन वस्तुओंमें अपनेपनका त्याग नहीं होता तो कोई बात नहीं; परन्तु 'शरीर-संसार मेरे नहीं हैं' यही बात सच्ची है—इतना आदर तो आपको करना ही चाहिये! भगवान् न दीखें तो न सही, पर 'भगवान् हमारे हैं, हम भगवान्‌के हैं'—यह बात सच्ची है। ब्रह्माजी भी इस विषयमें कह दें कि 'देखो, तुम संसारके हो और संसार तुम्हारा है, तुम भगवान्‌के नहीं हो और भगवान् तुम्हारे नहीं हैं', तो भी साफ कह दो कि 'महाराज! आपकी यह बात हम नहीं मानेंगे।' भले ही यह बात हमारे अनुभवमें न आयी हो, हमें पूरी न जँची हो; परन्तु बात यह सच्ची है! भगवान् स्वयं कहते हैं—'**ममैवांशो जीवलोके**' (गीता १५। ७) 'यह जीव मेरा ही अंश है।' सन्त-महात्मा भी यही कहते हैं—'***ईस्वर अंस जीव अबिनासी***' (मानस, उत्तर० ११७। २)। इसलिये मैं हाथ जोड़कर आपसे प्रार्थना करता हूँ, मेरेपर आप इतनी कृपा करो कि आप मेरी बात आज मान लो। माननेसे भले ही आपमें कोई परिवर्तन न आये, पहलेकी

तरह ही भूख-प्यास लगे, वैसे ही राग-द्वेष हों, पर कृपा करके इस बातको रद्दी मत करो। हम तो भगवान्‌के ही हैं—ऐसा मान लो, फिर अनुभव हो अथवा न हो, बोध हो अथवा न हो, इसकी परवाह मत करो। अन्तमें यह बात स्थिर हो जायगी; क्योंकि यह बात सच्ची है।

बिलकुल सच्ची बात है कि ***'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई'***। इसे माननेमें क्या जोर आता है? मानना तो आपको आता ही है; जैसे—आप किसीको अपना मित्र, गुरु आदि मान लेते हैं। इसी प्रकार न मानना भी आपको आता है; जैसे—पहले आप अपनेको कुँआरा मानते थे, पर विवाह हो जानेपर अपनेको कुँआरा न मानकर विवाहित मानने लग जाते हैं। यदि आप गृहस्थ छोड़कर साधु बन जाते हैं तो घर, परिवारको अपना मानना छोड़ देते हैं और गुरु महाराजको अपना मान लेते हैं। इसलिये मानना और न मानना—दोनों आपको आते हैं। मानने और न माननेकी विद्या सभीको आती है। अब इस विद्याको केवल भगवान्‌में लगाना है, संसारमें नहीं।

हमारेसे गलती यह होती है कि सुनते समय तो मान लेते हैं, पर फिर उसे उड़ा देते हैं और जो बात सच्ची नहीं है, उसे सच्ची मानने लग जाते हैं। एक और गलतीकी बात यह है कि भाई-बहन कहते हैं कि इस बातको हम भूल जाते हैं। वास्तवमें यदि आपने इस बातको दृढ़तासे मान लिया है, तो फिर भले ही यह याद न रहे। बिना याद किये भी यह स्वतः याद रहेगी। कैसे याद रहेगी? जैसे अभी आप मानते हैं कि हम वृन्दावनमें हैं, तो किसी भाई-बहनने 'मैं वृन्दावनमें हूँ'—इसकी एक भी माला फेरी है क्या? एक

बार आपने इसे मान लिया, फिर इसे बार-बार याद रखते हो क्या? इसमें सन्देह होता है क्या? जब कभी कोई पूछे तो तुरन्त कह देते हो कि हम तो वृन्दावनमें हैं। इस तरह बिना याद किये भी आपके भीतर बात रहती है। इसकी भूल तो तब मानी जायगी, जब आप यह मानने लग जायँ कि मैं तो हरिद्वारमें हूँ! अतः याद न रहनेको मैं भूल नहीं मानता हूँ। 'मैं भगवान्‌का हूँ'—यह याद न रहे तो यह भूल नहीं है; परन्तु 'मैं भगवान्‌का नहीं हूँ, मैं तो संसारका हूँ'—यह मान लेना भूल है।

एक बार सच्चे हृदयसे अपनेको भगवान्‌का मान लेनेके बाद फिर चाहे बिलकुल याद मत रखो। अब तो याद रखना है भगवान्‌का नाम। भगवान्‌के नामका जप करो, स्मरण करो, कीर्तन करो, उनकी लीलाओंका ध्यान करो, उनके स्वरूपका चिन्तन करो—ये बातें करनेकी हैं। भगवान्‌को तो एक बार अपना मानकर छोड़ दो। हम भगवान्‌के हैं—इसमें सन्देह मत करो, चाहे हमारे माननेमें आये या नहीं आये, उसका अनुभव हो चाहे नहीं हो, कोई परवाह नहीं।

बहुत-से लोग कह देते हैं कि तुम्हारे जीवनमें क्या फर्क पड़ा? फर्क चाहे कुछ न पड़े। न नापमें, न तौलमें, न रंगमें, न ढंगमें, कुछ फर्क न पड़े तो कोई बात नहीं! परन्तु 'हम तो मान नहीं सकते, हमें तो याद नहीं रहता, हम तो योग्य नहीं हैं, हम तो अधिकारी नहीं हैं, हम तो पात्र नहीं हैं, हमें तो गुरु नहीं मिले, हमें तो सन्त नहीं मिले; समय ठीक नहीं है, कलियुगका समय है, वायुमण्डल ठीक नहीं है, संग अच्छा नहीं है'—इन बातोंको लेकर इस बातको रद्दी मत

करो। तरह-तरहकी युक्ति लगाकर आप इस बातको रद्दी करते रहोगे तो सिद्धि नहीं होगी। परन्तु इस बातको रद्दी नहीं करोगे तो सिद्धि हो ही जायगी। यह सिद्धि कुछ दिनोंमें भी हो सकती है, महीनोंमें भी हो सकती है, वर्ष भी लग सकते हैं। संसारका सुख लेते रहोगे तो बहुत समय लगेगा, पर अन्तमें सिद्धि होकर रहेगी।

खेती करनेवाला खेतमें बीज बोकर निश्चिन्त हो जाता है। वह बीज अपने-आप ही अंकुर देता है। यदि वह बार-बार बीजको बाहर निकालकर देखेगा तो अंकुर कभी नहीं आयेगा। एक कहानी आती है। एक आमका बगीचा था। उसमें बन्दर आम खाने लगे तो बागमें रखवाली करनेवालोंने उनको पत्थर मारकर भगा दिया। जाते-जाते बन्दरोंने एक-एक आम मुँहमें और एक-एक आम हाथमें ले लिया और भाग गये। उन सबने मीटिंग की कि ये दुष्ट हमें आम खाने नहीं देते! उनमेंसे कुछ समझदार बन्दर बोले कि वे अपने बगीचेमें आम कैसे खाने देंगे? यदि हम भी एक बगीचा लगा लें तो फिर हमें आम खानेसे कोई मना नहीं करेगा। उन्होंने सोचा कि गुठली तो है ही, इनका बगीचा लगा लें। गुठली गाड़ दें और पानी दे दें तो बगीचा तैयार हो जायगा, फिर खूब आम खायेंगे! सर्वसम्मतिसे प्रस्ताव पास हो गया। एक नदी बह रही थी, उसके किनारे गुठलियाँ गाड़ दीं। अब वे बार-बार गुठलियोंको निकालकर देखते हैं कि अभी आम हुआ कि नहीं और उनको पुनः गाड़ देते हैं! शामतक वे इसी प्रकार गुठलियोंको निकालते तथा गाड़ते रहे! क्या इस प्रकार आमकी खेती हो जायगी? खेती करनी हो तो बीज बोकर पानी दे दो और निश्चिन्त हो जाओ। जो अभी

नहीं है, वह भी निश्चिन्त होनेसे पैदा हो जायगा, फिर जो सच्ची बात है, वह सिद्ध क्यों नहीं होगी? हम भगवान्‌के हैं और भगवान् हमारे हैं—यह बात सच्ची और स्वत:सिद्ध है। इसको माननेमें क्या परिश्रम आता है? क्या जोर पड़ता है? क्या किसी विद्याकी आवश्यकता है? कोई योग्यता चाहिये? सीधी बात है कि हम भगवान्‌के हैं, भगवान् हमारे हैं; हम संसारके नहीं हैं, संसार हमारा नहीं है। अब आप इसे आमकी गुठलीकी तरह उखाड़ें नहीं अर्थात् कभी परीक्षा न करें कि हमारेमें कुछ फर्क पड़ा कि नहीं? अंकुर फूटा कि नहीं? फिर वृक्ष उग जायगा, आम भी लग जायँगे, सब बढ़िया हो जायगा! परन्तु कृपा करो कि इस बातको हटाओ मत। यह भगवत्प्राप्तिका बहुत सुगम उपाय है और कुछ नहीं करना है। बस, 'मैं भगवान्‌का और भगवान् मेरे' इस निश्चयको अपनी तरफसे हटाना नहीं है।

ये भाई बैठे हैं; पहले ये अपनेको कुँआरा मानते थे। परन्तु विवाह हो गया तो कहने लगे कि हम तो कुँआरे नहीं हैं। अब कोई पूछे कि तुम्हारा विवाह हो गया क्या? तो क्या यह कहोगे कि ठहरो, सोचने दो; इस साल तो नहीं हुआ, गये साल भी नहीं हुआ, बीस साल पहले हुआ था, हाँ-हाँ, याद आ गया, हो गया विवाह! ऐसा क्यों नहीं कहते? क्योंकि विवाह हो गया तो हो गया। यह मान्यता है। यदि स्वप्नमें भी कोई पूछे तो यही कहोगे कि विवाह हो गया। ऐसे ही 'मैं परमात्माका हूँ और परमात्मा मेरे हैं' यह बिना याद किये याद रहेगा। इसमें भूल नहीं होगी। भूल तब होगी, जब आप सोचेंगे कि मैं परमात्माका नहीं हूँ और परमात्मा मेरे नहीं हैं; क्योंकि मेरे आचरण अच्छे नहीं हैं,

मेरे लक्षण अच्छे नहीं हैं, भगवान्‌पर विश्वास नहीं है, श्रद्धा नहीं है। यह बाधाएँ मत लगाओ। विश्वास नहीं हो, श्रद्धा नहीं हो, स्मरण नहीं हो, हमारेमें परिवर्तन नहीं हुआ हो, जीवन न सुधरा हो, कुछ भी न हुआ हो, फिर भी इस मान्यताको रद्दी मत करो कि मैं भगवान्‌का हूँ और भगवान् मेरे हैं।

जो मेरी दृष्टिमें महापुरुष हैं, उनसे भी मैंने पूछा है। उन्होंने कहा है कि जो मनुष्य परमात्माको अपना मान लेता है, उसे जाननेकी जिम्मेवारी परमात्मापर आ जाती है; क्योंकि परमात्मा ही जना सकते हैं, हम नहीं जान सकते। जहाँ हम असमर्थ होते हैं, वहाँ भगवान्‌की सामर्थ्य काम करती है। कितनी बढ़िया बात है कि 'मैं भगवान्‌का हूँ और भगवान् मेरे हैं, मैं संसारका नहीं और संसार मेरा नहीं— यह माननेकी योग्यता आपमें है! आपमें जितनी योग्यता है, उतनी आप लगा दें। जो नहीं है, उसकी पूर्ति भगवान् करेंगे—***'सुने री मैंने निरबलके बल राम।'*** जितने अंशमें आप निर्बल हैं, उतने अंशमें भगवान्‌का बल काम करता है। परन्तु जितने अंशमें आप सबल हैं, उतना बल आप नहीं लगाते तो इसमें दोष आपका है, इसकी जिम्मेवारी भगवान्‌पर नहीं है। किसीको तो आप अपना मान लेते हैं और किसीको अपना नहीं मानते—इस योग्यताको आप भगवान्‌में क्यों नहीं लगाते? आप जितना कर सकते, उतनेकी ही आशा भगवान् आपसे करते हैं। जो आप नहीं कर सकते हैं, उसकी आशा भगवान् आपसे नहीं करते। एक छोटे बच्चेसे क्या आप आशा करते हैं कि वह एक गेहूँका बोरा उठा लाये? आप उतनी ही आशा करते हैं, जितना बच्चा

कर सकता है। फिर भगवान् इतने भी ईमानदार नहीं हैं क्या? जो आप नहीं मान सकते, उसे आप मान लो—ऐसा भगवान् कहेंगे क्या? जो आप नहीं मान सकते, उतना मान लो, बस। यह जो साधन आज आपको बताया है, यह इतना सुगम और सरल है कि हरेक कर सकता है। पढ़ा-लिखा हो या अपढ़ हो, भाई हो या बहन हो, सदाचारी हो या दुराचारी हो, सद्‌गुणी हो या दुर्गुणी हो, सज्जन हो या दुष्ट हो, कैसा ही क्यों न हो, इसको मान सकता है।

पतिव्रताके लिये कहा गया है—

एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। कायँ बचन मन पति पद प्रेमा॥

(मानस, अरण्य० ५। १०)

ये मेरे पति हैं—यह मान्यता दृढ़ होनेसे पति चाहे जैसा हो, वह पतिव्रता हो जायगी। रावण एक विशेष महात्मा था क्या? परन्तु मन्दोदरीने अपने पातिव्रतधर्मका ठीक पालन किया, जिसके प्रभावसे वह रामजीकी महिमा जानती थी, जबकि रावण कहनेपर भी नहीं मानता था! उसमें इतना ज्ञान कहाँसे आया? यह ज्ञान आया पातिव्रतधर्मसे। क्या भगवान् कह सकते हैं कि तुम्हारा पति सदाचारी नहीं है; अतः तुम्हारा कल्याण नहीं होगा? नहीं कह सकते। वह सदाचारी नहीं है तो हम क्या करें? हमने अपने पातिव्रतधर्मका ठीक पालन किया है तो उसका पूरा माहात्म्य भगवान् देंगे—***'बिनु श्रम नारि परम गति लहई'*** (मानस, अरण्य० ५। १८)। परमगति पानेकी जिम्मेवारी उसपर नहीं है। इसकी जिम्मेवारी है—शास्त्रोंपर, सन्तोंपर, भगवान्‌पर। वह पातिव्रतधर्मका पालन करती है तो वह ऋषि-मुनियोंकी, सन्त-महात्माओंकी, भगवान्‌की आज्ञाका पालन कर रही है; अतः उनको उसका कल्याण

करना पड़ेगा। पतिमें योग्यता नहीं है तो उसका क्या दोष? माता-पिताने विवाह कर दिया तो वह उसका पति हो गया। उसका दोष तो तब होगा, जब वह अपने पातिव्रतधर्मका पालन न करे। ऐसे ही 'मैं भगवान्‌का हूँ, भगवान् मेरे हैं' इस बातको आप न मानें तो यह आपका दोष है। परन्तु यदि आप भीतरसे मानना चाहते हों और माना जाये नहीं, तो कोई परवाह नहीं। अपनी शक्ति पूरी लगा दें। कम-से-कम उलटी मान्यता मत करें, इस बातको रद्दी मत करें। यह आपको मार्मिक बात बतायी है।

'मैं भगवान्‌का हूँ, भगवान् मेरे हैं'—इतना मान लो, फिर आगे जो होना चाहिये, वह स्वतः होगा। इसको माननेके बाद निर्विकल्प हो जाओ। अब जितना उद्योग है, वह करो; नाम-जप करो, कीर्तन करो, सत्संग करो, स्वाध्याय करो, मन्दिरोंमें जाओ, श्रीविग्रहके दर्शन करो। जो कार्य भगवान्‌के, शास्त्रोंके विरुद्ध है, वह काम मत करो। जहाँतक अपना वश चले, जितना कर सकते हो, उतना करो। इस बातको हिलने-डुलने मत दो, चाहे विपत्ति आये, चाहे सम्पत्ति आये; कोई अनुमोदन करे या विरोध करे। यह बात सच्ची है; अतः हमने तो मान ली, मान ली। शेष सब सच्ची हैं।

अब प्रश्न हो सकता है कि हम ऐसा करें, पर भगवान्‌की प्राप्ति न हो तो? इसका उत्तर है कि इतने दिनोंमें आपने कौन-सा बढ़िया काम कर लिया, जिसमें घाटा पड़ जायगा? होगा तो लाभ ही होगा। आपमेंसे कोई बताये कि हानि क्या होगी? हानि कुछ होगी नहीं और धोखा मैं देता नहीं! इससे लाभ ही होगा; क्योंकि यह सच्ची

बात है और सच्ची बात सिद्ध होकर ही रहेगी। झूठी बात कबतक रहेगी? शरीर-संसारको अपना माननेसे क्या ये अपने बन जायँगे? ये कभी अपने बने नहीं और बनेंगे नहीं; परन्तु इनको अपना मानोगे तो दुःख पाना पड़ेगा और रोना पड़ेगा! इनसे धोखा खाकर फिर सच्ची बात मानो तो इससे अच्छा यही है कि अभी मेरे कहनेसे मान लो। बताओ, इसमें क्या धोखा हो जायगा? और यदि धोखा हो भी जाय, तो इतनी बार धोखा खाया, एक बार मेरे कहनेसे भी खा लो! परन्तु यदि आपमेंसे किसीको भी धोखा दीखता हो तो कह दो भाई! इसमें धोखा बिलकुल है ही नहीं। इसमें लाभके सिवा किंचिन्मात्र भी नुकसान नहीं है। यह केवल मैं ही नहीं कहता, स्वयं भगवान् भी कहते हैं—**'ममैवांशो जीवलोके'** (गीता १५। ७) और सन्त-महात्मा भी कहते हैं—***'ईस्वर अंस जीव अबिनासी'*** (मानस, उत्तर० ११७। २)। अतः इस बातको खूब दृढ़तासे पकड़ लो। यह सन्तोंका निर्णय किया हुआ सिद्धान्त है। सन्तोंने, महात्माओंने इसे करके देखा है और हम लोगोंपर कृपा करके इसे लिख दिया है, बता दिया है। जैसे कोई पिता धन कमाकर लड़केको दे दे तो लड़केको क्या जोर आया? ऐसे ही सन्त-महात्माओंने यह कमाई हुई पूँजी हमें दे दी है। अब हमारा कर्तव्य है कि इसे सुरक्षित रखें, रद्दी न करें। रद्दी होता है देखनेसे और करनेसे। इन्द्रियोंसे, बुद्धिसे देखने और करनेको तो मानते हो सच्चा और भगवान्‌के, सन्त-महात्माओंके वचनोंको मानते हो कच्चा, यह गलती है। जो दीखता है, वह है नहीं। क्रिया भी नित्य नहीं है और उसका फल भी नित्य नहीं है। अतः इनके भरोसे सत्यका

निरादर करके सत्यका गला मत घोटो, सत्यकी हिंसा मत करो। सत्यकी हिंसा करनेसे सत्यकी हिंसा नहीं होती, प्रत्युत अपनी ही हिंसा होती है, अपना ही पतन होता है। सत्य तो सत्य ही रहेगा। वह तो कभी मिटेगा नहीं—'**नाभावो विद्यते सतः**' (गीता २। १६)। आप उसको नहीं मानेंगे तो आपको लाभ नहीं होगा। इसलिये 'मैं भगवान्‌का हूँ और भगवान् मेरे हैं'—इस बातको मान लो। यह बहुत सरल और ऊँचे दर्जेकी बात है। इससे सब कुछ हो जायगा!